संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

वैदिकधर्म

सहसंपादक
महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु. वी. पी. से ५॥) रु. विदेशके ६॥) रु.

विषयानुक्रमणिका

वर्ष ३४ **वैदिक धर्म** अंक १

क्रमांक ४९

▲ पौष, विक्रम संवत् २००९, जनवरी १९५३ ▲

सब ओरसे संरक्षण

पश्चात्पुरस्तादधरादुतोत्तरात् कविः काव्येन परि पाह्यग्ने ।
सखा सखायमजरो जरिम्णे अग्ने मर्ताँ अमर्त्यस्त्वं नः ॥

अथर्व० ८।३।२०

हे अग्ने ! तू कवि है, अतः अपने काव्यसे पीछेसे, आगेसे, ऊपरसे और नीचेसे अर्थात् सब ओरसे हमारी सुरक्षा कर । तू मित्र है अतः मुझ जैसे मित्रका संरक्षण कर । तू जरारहित है अतः तू मुझ जैसे जराग्रस्तकी सुरक्षा कर । तथा तू अमर है इसलिये हम मरण धर्मवालोंकी उत्तम सुरक्षा कर ।

वीर ज्ञानी बने और अपने ज्ञानसे सबका संरक्षण चारों ओरसे करे । शत्रुको किसी तरह आक्रमण करनेके लिये थोडा भी अवसर न दे । वह वीर जनताका मित्र बनकर सबका हित करे । स्वयं जरारहित अर्थात् वृद्ध अवस्थामें भी तरुण बने और वृद्धोंको भी बलवान बनानेका मार्ग दर्शावे । स्वयं अमरत्व प्राप्त करके अन्योंको मुक्तिका मार्ग बतावे ।

▲▲▲

वागाम्भृणीय सूक्त

(ऋ० मं० १०, सूक्त १२५ । ऋषि-वाक्, देवता-वाक्, छन्दस्-त्रिष्टुप् ।)

[अनुवादक— श्री पाण्डेय कपिलदेवनारायणसिंह]

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति
यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति
श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥ ४ ॥

है जिन्हें शक्ति देखने और सुननेकी,
जिनमें श्वासोंकी गति मिलती है- वे सब,
मेरे कारण ही अन्न ग्रहण कर पाते;
सुन लो, सुन लो यह, तुम विश्वास करो अब ॥ ४ ॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि
जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ५ ॥

मैं यह सब खुद ही कहती, पर जो कहती,
वह कथन देव-मनुजों में आदर पाता ।
यदि चाहूँ, उग्र बना दूँ उसको, अथवा
निर्मायक, या ऋषि, या सब कुछका ज्ञाता ॥ ५ ॥

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि
ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणो—
म्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ ६ ॥

मैं रुद्रोंके हित धनुष तान लेती हूँ।
मैं ब्राह्मण-रिपुपर धनुष तान लेती हूँ।
मैं ही धरती-दिव घट घटमें हूँ रमती,
मानवको मैं ही चिदानन्द देती हूँ ॥ ६ ॥

भारतीय संस्कृतिका स्वरूप

[लेखांक २१]

(लेखक— श्री. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

• • • • • • •

राष्ट्रकी अर्थव्यवस्था

अर्थ व्यवस्था

कोई भी संस्कृति हो, यदि उसकी अर्थव्यवस्था ठीक होगी, हानिकारक न होकर शाश्वत रहनेवाली होगी तो ही वह संस्कृति उत्तम मानी जावेगी। इस प्रकारकी अर्थ-व्यवस्था भारतीयोंने सिद्ध करके दिखाई थी। इस विषयमें पिछले लेख में हमने देखा है कि पैसेसे सम्बन्ध रखे बिना भी मनुष्यके जीवनका तीन चतुर्थांश भाग सुखपूर्वक एवं निश्चिन्ततासे बीतता था। यही कारण था कि वे सत्य, अस्तेय और अपरिग्रहादिका पालन सहजतया कर सकते थे।

आज हमारा जीवन यूरोपीय पद्धतिका हो जानेके कारण बचपनसे लेकर मरनेतक प्रत्येक क्षण पैसेसे सम्बन्ध रखे बिना नहीं बीतता। इसलिये स्पर्धा बढती जा रही है, व्यय बढता जा रहा है और आवश्यकतायें भी बढती जा रही हैं। मनुष्योंको चैन नहीं मिल पाती, चिन्ता भयङ्कर रूपसे बढती जाती है और इसीलिये दिन प्रतिदिन जीवन कष्टमय बनता चला जा रहा है। यदि हम प्राचीनकालके भारतीयोंके समान बिना पैसेसे सम्बन्ध रखे, सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें तो निश्चयही हमारा जीवन अधिक सुखपूर्ण बन सकता है। अतएव प्राचीनकालके भारतीयोंकी आर्थिकव्यवस्थाके सम्बन्धमें कुछ अधिक विचार कर लेना चाहिये।

धन किसका ?

भारतीय संस्कृतिमें धन किसका समझा जाता था? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। 'सम्पूर्ण धन प्रजापतिका है' ऐसा माना जाता था। 'कस्य धनं' में 'क' का अर्थ प्रजापति है। प्रजापतिका अर्थ परमेश्वर, ईश्वर, यज्ञ, प्रजापालन करनेवाला राजा, प्रजापालक संस्था आदि अनेक प्रकारसे किया जाता है। कोई भी अर्थ होनेपर 'व्यक्तिका धन नहीं' यह भाव इन समस्त अर्थोंमेंसे प्रकट होता ही है। यही भाव यहाँ ध्यान रखने योग्य है। धनपर व्यक्तिकी सत्ता नहीं है।

व्यक्ति धन प्राप्त करे, थोडे समयतक उसका संग्रह भी अपने पास करे, किन्तु अन्तमें उसे वह धन यज्ञके लिये देना ही चाहिये। उसका उपभोग वह कायमके लिये नहीं कर सकेगा।

सम्पूर्ण प्रजा यज्ञके साथ उत्पन्न हुई है (सह यज्ञाः प्रजाः। गीता) इसलिये प्रजाका जीवन यज्ञके लिये ही है और उसका धन भी यज्ञके लिये है। मनुष्यकी उत्पत्ति यज्ञके लिये है और यह यज्ञ मनुष्यके जीवनका एक भाग है। अतः अपना सर्वस्व यज्ञके लिये समर्पित कर देना चाहिये।

वेदमें इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उसे यहाँ लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। यहाँ हमें केवल भारतीय तत्त्वपर विचार करना है और वह यह है कि (पुरुषो वै यज्ञः) मनुष्य यज्ञ है, उसका सर्वस्व यज्ञके लिये है। उसका धन यज्ञके लिये है अतः वह यज्ञके लिये ही खर्च होना चाहिये।

शतक्रतु बनना चाहिये।

वेदोंकी व्यवस्था यह है कि मनुष्य सर्व प्रथम गुरुकुलमें रहकर शिक्षा प्राप्त करे और गृहस्थाश्रम स्वीकारनेके पश्चात् १०० वर्षका जीवन यापन करे तथा प्रतिवर्ष एकके हिसाबसे १०० वर्षोंमें मिलकर १०० यज्ञ करे और इस प्रकार वह 'शतक्रतु' बने। वह जिस आश्रममें होगा वहाँ

वह तदनुकूल यज्ञ करे। क्योंकि वह जीवन ही यज्ञमय है; अतः बिना यज्ञके वह रह ही नहीं सकता।

इस प्रकार यज्ञके लिये सर्वस्वका अर्पण करना है। इसीलिये कहा गया है कि धन प्रजापतिका है और वह प्रजापति को ही समर्पित करना चाहिये अर्थात् धन यज्ञके लिये है और इसलिये उसे यज्ञके लिये अर्पित करना चाहिये। धन-पर व्यक्तिकी सत्ता नहीं है। उसपर तो समष्टिकी सत्ता है, यही मुख्यभाव यहाँपर है। उपनयनसे लेकर मरणपर्यन्त यज्ञ ही करने हैं तथा अधिकांश यज्ञ समाजके हितके लिये ही हैं।

व्यक्ति और समाज

व्यक्ति मरता है चाहे वह १०० वर्षों बाद मरे। वह शाश्वत रहनेवाला नहीं है। शाश्वत रहनेवाली तो समष्टि है। इसके लिये समाज, राष्ट्र, समष्टि, जनता आदि किसी भी शब्दका प्रयोग किया जा सकता है। व्यक्ति नश्वर एवं समष्टि अमर है। अतः धन उसीका होगा जो अमर या शाश्वत होगा। इसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है कि प्रत्येक हिन्दु मर रहा है किन्तु हिन्दुसमाज अमर है। मनुष्यके मरते रहनेपर भी मनुष्य जाति अमर है। सबका यही अनुभव है।

विचार न करनेवाले लोग कहा करते हैं कि धन मेरा है। मेरा मेरा कहते कहते व्यक्तीकी मृत्यु हो जाती है। उसके बाद उसका पुत्र कहता है कि धन मेरा है। इस प्रकार हर कोई 'धन मेरा है' ऐसे कहता कहता मर जाता है और उस धनपर दूसरेका स्वामित्व हो जाता है। इसीसे यह सिद्ध होता है कि धनपर व्यक्तिका स्वामित्व होना ही सम्भव नहीं है; क्योंकि व्यक्ति मरणशील है। फिर स्वामित्व किसका? अर्थात् वह व्यक्ति जिस समाजका घटक है उसीका वह धन है; क्योंकि समाज शाश्वत है।

इसी विचारप्रणालीसे अधिक दूरतक विचार करनेपर हमें विदित होता है कि पृथ्वीपरका सम्पूर्ण धन मानव समष्टिका है। किन्तु सम्पूर्ण मानव समष्टिका विचार करना कठिन है; क्योंकि उसमें अनेक कठिन समस्यायें सामने आ जाती हैं। अतएव हम समष्टिको एक राष्ट्रतक सीमित मानकर विचार करेंगे।

धन व्यक्तिका न होकर राष्ट्रका है, ऐसा समझना चाहिये। इससे आजकी भाषामें विचार करनेमें सरलता होगी। व्यक्ति मरणशील है और राष्ट्र अमर है। अतः धन सम्पूर्ण राष्ट्रका है व्यक्तिका नहीं।

यद्यपि व्यवहारमें कानूनन वैयक्तिक स्वामित्वका तत्त्व माना जाता है तथापि अन्तिम अधिकार राष्ट्रका ही माना गया है। लावारिसके मर जानेपर उसका धन सरकारी हो जाता है। सरकारको आय पर तथा अन्य जो कर लगानेका अधिकार प्राप्त है वह इसी तत्त्वको मानकर है कि 'धनपर राष्ट्रका--राष्ट्रकी सम्पूर्ण जनताका--अधिकार है। यूरोपमें अथवा भारतमें अत्यन्त धनवानोंपर अस्सीनब्बे प्रतिशततक कर (आयपर) लिया जाता है। इन आंकडोंसे यही सिद्ध होता है कि धनका स्वामित्व प्रजापालकको प्राप्त है। धन प्रजापतिका है इसलिये प्रजापति उसे कर रूपमें वसूल कर लेता है और उसका उपयोग प्रजापतिके नाते प्रजापालनके लिये करता है।

सम्पूर्ण प्रजाका धन है।

वास्तवमें धन सम्पूर्ण प्रजाका है। प्रजापालक संस्था समस्त प्रजाकी प्रतिनिधि है; इसलिये वह सबके लिये धन वसूल करती है। कुछ भी हो, धन सबका है। किसी एक व्यक्ति का नहीं है, यही सिद्धान्त यहाँ मुख्य है और यही वैदिक यज्ञ-संस्थाका जनक है।

'विश्व और सर्व' शब्द ईश्वरवाचक हैं; क्योंकि 'सर्व' ही ईश्वरका स्वरूप है। इसलिये जिस धनको हमने ईश्वरका है, ऐसा कहा वह सबका है। क्योंकि जो 'सर्व' है वही ईश्वर है और जो ईश्वर है वही सर्व है। अर्थात् 'ईश्वरका धन' और 'सर्व का धन' इसका एक ही अर्थ है। इसी मुख्य सिद्धान्तपर सम्पूर्ण यज्ञसंस्थायें आधारित हैं।

व्यक्तिके पासका धन सबका है। उसे व्यक्ति सबके लिये अर्पण करे अर्थात् वह यज्ञ करे।

व्यक्ति सबके लिये है

व्यक्ति स्वयंके लिये न होकर वह सबके लिये है। शरीरका ही उदाहरण देखिये। हमारे नेत्र केवल नेत्रोंके लिये न होकर सम्पूर्ण शरीरके लिये है। इसी प्रकार नाक, कान, हाथ, पैर, पेट आदि प्रत्येक अवयव केवल स्वयंके लिये न होकर सम्पूर्ण शरीरके लिये ही हैं। यदि प्रत्येक अवयव केवल अपने ही लिये जीवित रहने लगा तो वह इस प्रकार

जीवित रह भी नहीं सकता। क्योंकि इस प्रकार जीवित रहनेके लिये उसका अस्तित्व नहीं है। प्रत्येक अवयवको समस्त शरीरके लिये आत्मसर्वस्वका समर्पण करना चाहिये। आंख, कान, नाक, हाथ, पैर और पेट इन्हें सम्पूर्ण शरीरके लिये जीवित रहना है। शरीरकी पर्वाह न करके यदि वे अपने ही लिये जीवित रहने लगे तो शरीरकी मृत्यु ही हो जावेगी। अतः प्रत्येक अवयवको समर्थ बनना चाहिये और अपनी शक्ति सम्पूर्ण शरीरके लिये अर्पण करनी चाहिये। जीवनका यह नियम हमारे लिये आदर्श स्वरूप है।

प्रत्येक व्यक्तिको समर्थ बनना चाहिये तथा समस्त समाजके लिये अपने जीवनका यज्ञ करना चाहिये। यह जीवनका नियम है और इसीका नाम यज्ञ है। इस प्रकार यह यज्ञ अनुभवसिद्ध है। प्रत्येक व्यक्ति समाजपर ही सर्वथा अवलम्बित है। समाजकी सहायताके बिना कोई जीवित भी नहीं रह सकता। इस प्रकार व्यक्ति एक प्रकारसे समाजका ऋणी है। इससे उसे उऋण होना चाहिये। यही यज्ञ है।

बचपनमें व्यक्ति सर्वथा परावलम्बी रहता है। बडा होकर हजारों प्रकारसे उसे समाजका आश्रय लेना ही होता है। समाजकी-सर्वकी-परमेश्वरकी-शक्ति लेकर व्यक्ति एक मनुष्य-जीवित रहता है। अतः जो हमारे पास हो उसे सर्वके लिये अर्पण करना चाहिये। इस प्रकार आत्मार्पण करना उसका कर्तव्य ही है।

ब्राह्मणको अपने ज्ञानका, क्षत्रियको अपने बलका, वैश्यको अपने धनका और शूद्रको अपनी कर्मशक्तिका अर्पण राष्ट्रके लिये इसीलिये करना चाहिये। इसीका नाम यज्ञ है। यही यज्ञका सिद्धान्त है। मनुष्यके साथ ही यज्ञ उत्पन्न हुआ है सो वह इस प्रकारका है और मनुष्यको यह यज्ञ करना ही चाहिये। यज्ञका होते रहना उद्धारका हेतु है तथा उसका बंद हो जाना अवनतिका कारण है।

यह सब देखनेके लिये हमें बहुत दूर जानेकी आवश्यकता नहीं है। अपने शरीरमें ही देखिये। जब तक प्रत्येक अवयव समस्त शरीरके लिये अपनी शक्ति समर्पित कर रहा है तभीतक शरीरका आरोग्य टिका रह सकता है। पेटके पास पहुँचा, उसे उसने पचाकर उसका रक्त बनाया और सारे शरीरमें पहुँचा दिया। यदि वह ऐसा न करे और प्राप्तान्नको अपने पास ही रखले तो उसकी यह स्वार्थवृत्ति शरीरके विनाशका कारण बन जावेगी। पेट फूल जाएगा और नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होकर अन्तमें मृत्यु हो जावेगा। इस प्रकार एक अवयवका स्वार्थ सम्पूर्ण शरीरके विनाशका कारण बन बैठता है। सभी इन्द्रियोंके विषयमें यही स्थिति है। शरीरमें यदि रुधिराभिसरण सम्यग् न हुआ और वह कहीं एक ही स्थानपर संचित रहा तो वहाँ सूजन आ जावेगी और कुछ न कुछ अनर्थ हो जाएगा।

इस प्रकार एक अवयवके अपने कर्तव्यसे च्युत हो जाने पर शरीरका नाश हो जाता है। फिर यदि एकसे अवयव ऐसा करने लग जावें तो न जाने शरीरकी क्या बुरी अवस्था होगी।

शरीरके समान ही राष्ट्रकी अवस्था है। राष्ट्रके अवयव ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद ये हैं। ये राष्ट्रके लिये अपनी शक्ति अर्पित करेंगे तो ही सम्पूर्ण राष्ट्र उत्तमावस्था में रह सकता है। किन्तु ये ही स्वार्थरत होकर केवल अपने लिये ही जीने लगे और राष्ट्रका धन अपने ही उपभोगके लिये लेने लगे तो राष्ट्रका विनाश हुए बिना न रहेगा। इसी प्रकार अपने धनका उपयोग यज्ञके लिये न करके स्वार्थसाधन करने लगे तो भी विनाश ही होना है।

ब्राह्मण ज्ञान द्वारा राष्ट्रको ज्ञानी बनावें, क्षत्रिय राष्ट्रकी भलि प्रकार रक्षा करें, वैश्य धनधान्य उत्पादन करके समृद्ध बनावें और गायोंका पालन करके राष्ट्र के दूधकी आवश्यकता पूरी करें, कारीगर अपनी कलाओंकी उन्नति करें। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्यके राष्ट्रार्थ अपना जीवन अर्पण करनेपर राष्ट्रके उत्थानमें विलम्ब न होगा।

प्रत्येकको चाहिये कि वह स्वयंको समर्थ बनावे और फिर अपना सामर्थ्य राष्ट्रके अर्पण कर दे। जो मनुष्य समर्थ नहीं होगा वह यदि अपना सर्वस्व अर्पण कर दे तब भी कोई लाभ नहीं होगा।

यहाँ यह निष्पन्न हुआ कि धन व्यक्तिका नहीं है। वह राष्ट्रका है और इसीलिये उसका उपयोग भी राष्ट्रके लिये ही होना चाहिये। व्यक्तिके पास धन रहे और वह उसके पास धरोहरके रूपमें सुरक्षित रहे; किन्तु आवश्यकता पडने पर उसका उपयोग जनताकी भलाई के कार्योंमें होना चाहिये। धनका उपयोग किस प्रकार हो? इस प्रश्नका उत्तर

यों किया जा सकता है कि व्यक्ति अपने पासका धन राष्ट्रपतिको, राज्यशासन संस्थाको दे और वह उसका उपयोग राष्ट्रके लिये करे। जब जनता और शासक एक विचारके होंगे तब यह मार्ग उत्तम, अन्यथा अपने धनका दान अच्छी शिक्षासंस्थाओंको कर देना चाहिये। ग्रन्थ प्रकाशन के लिये दान दिया जावे, अच्छे छात्रोंको शिष्य वृत्तियाँ दी जावें, औषधालय, रुग्णालय, प्रसूतिगृह, नदियोंके पुल, तालाव, बांध, कुएं, घाट, वृक्षारोपण आदि अनेक उपयोगी कार्योंके लिये अपने धनका उपयोग करे। इन कार्योंकी सूची बनाना कोई सरल काम नहीं है; क्योंकि कालानुसार वे काम बदलते रहते हैं। अतः जब और जो सार्वजनिक हितके कार्य हों वे उस समय करने योग्य हैं।

'समस्त जनता' ही परमेश्वर का प्रत्यक्ष रूप है। इसीको मानवी रूपमें प्रकट हुआ हुआ 'विश्वरूप ईश्वर' ऐसा कहा जाता है। इसकी सेवा होनी चाहिये। यह स्वकर्मसे करनी है या स्वअर्पणसे करनी है।

धन विश्वरूपी प्रजापतिका है। वह उसके लिये खर्च होना चाहिये। वह मेरा नहीं है, अतः वह उसका उसीको अर्पण करना है। यही विश्वात्माका यजन है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि यहाँ राष्ट्र शब्दका प्रयोग करने पर भी समस्त पृथ्वीका धन पृथ्वीकी समस्त जनताका है, ऐसा भाव व्यक्त होता है। इसके समझनेके लिये हमने 'राष्ट्र' शब्दका प्रयोग किया है। एक राष्ट्र दूसरेसे भिन्न नहीं है। समस्त मानव जाति मिलकर प्रजापतिका स्वरूप बनता है। इस अखण्ड विश्वरूपकी सेवा होनी चाहिये। यही आशय यहाँ है।

[लेखांक २२]

प्राचीन एवं अर्वाचीन भक्तिमार्ग

अवतारों के सन्देश

प्रचलित 'हिन्दुधर्म' और प्राचीन भारतीय 'वैदिक धर्म' इनमें कितना अन्तर हो गया है, यह इस समय देखना चाहिये। भगवान रामचन्द्र और भगवान श्रीकृष्णकी भक्ति आज भी भारत भर प्रचलित है। कोई भी गांव या हिन्दुका घर ऐसा नहीं मिलेगा जहाँ इन महान पुरुषोंके विषयमें आदरभाव न मिले। वैष्णव सम्प्रदायने भी इस राम और कृष्णकी भक्ति को भारतमें ही नहीं अपितु भारतके बाहर भी फैलाया है। किसी न किसी रूपमें आज भी उसका अस्तित्व मिलता ही है। यह बात जिस प्रकार अभिमानास्पद है उसी प्रकार यह भी विचारार्ह है कि आज हम उन दिव्य पुरुषोंके सन्देश मानते हैं या नहीं?

प्राचीन एवं अर्वाचीन भक्ति

प्रथमतः हम यह देखेंगे कि पूर्वकी एवं वर्तमानकी भक्ति किस प्रकार थी तथा आज उसका स्वरूप क्या बन गया है। भगवान रामचन्द्रका भक्त हनुमान और भगवान् श्रीकृष्णका भक्त अर्जुन ये दोनों सम्पूर्ण भक्तोंमें श्रेष्ठ थे। किन्तु इन्होंने जिस प्रकारसे भक्ति की वह आजके समान नहीं दिखाई देती। इसका विचार हम आगे करेंगे।

आजकी भक्ति

आज सम्पूर्ण देशमें भक्तिका जो प्रकार दिखाई देता है वह राम-कृष्णके नामका जप करना, इस रूपमें है। कोई 'राम राम' जपता है तो कोई 'कृष्ण कृष्ण' जपता है अथवा 'जय जय राम कृष्ण हरे' या इसी प्रकारके अन्य अनेक नाम मन्त्रोंके जाप आज भक्तिरूपमें रूढ हो गये हैं। माला लेकर जपकरने अथवा तालियाँ बजाकर उसकी गूंजमें जाप करनेकी भी प्रथा है। चाहे किसी प्रकार भी हो नामका उच्चारण उन सबमें मुख्य है। जो इस प्रकार करता है वह भक्तिमार्गी या भक्त कहाता है। इस प्रकारके लाखों भक्त भारतके अनेक तीर्थोंमें प्रतिवर्ष एक निश्चितसे दिन एकत्रित होते हैं।

इसीका एक दूसरा प्रकार किन्हीं भक्तोंने अनेक वर्षोंसे आरम्भ किया है। साफा, रुमाल, अंगोछा, धोती आदिपर 'राम' आदि शब्द छाप लिये जाते हैं। 'कृष्ण' का नाम छापा हुआ हमें दिखाई नहीं पड़ा। किन्तु संयुक्त प्रान्तमें 'राम' नामके छपे वस्त्रोंका उपयोग करनेवाला भक्त माना जाता है। अर्थात् ऐसे वस्त्रोंको धारण करलेने पर यदि

जप न भी किया तब भी पुण्यलाभ हो जाता है, ऐसी इनकी भावना है। नींद आजाने पर भी यदि ऐसे वस्त्र ओढ ही लिये जावें तब भी उससे कुछ न कुछ पुण्य प्राप्ति होती ही है, ऐसी इनकी भावना है!!

प्रार्थना की दीवारें

हिमालय और तिब्बतके बौद्धोंमें इससे भी अधिक सरलतापूर्वक होनेवाला जपका एक प्रकार हमने देखा है। हिमालयमें प्रार्थनाओंकी दीवारें हैं। ये दीवारें लगभग छातीके बराबर ऊंची है तथा इन दीवारोंके पत्थरोंपर 'ओं मणिपद्मे हुं' मन्त्र खुदा रहता है। भावुक भक्तोंने प्रवासियोंके लिये इस प्रकारकी दीवारें मीलोंतक बांध रक्खी हैं। इन दीवारोंका स्पर्श करते हुए जानेमात्रसे पुण्यलाभ होता है।

हिमालयके चढावके रास्तोंमें इस प्रकारकी दीवारें प्रवासियोंको हाथ टेकनेके लिये उपयोगी पडती हैं और इनके स्पर्शसे पुण्यलाभ भी हो जाता है। मुखसे मन्त्रोंका जाप करनेकी आवश्यकता नहीं है। केवल हाथसे स्पर्शकर देना मात्र यात्रीके लिये पर्याप्त है। इस प्रकार पुण्यसंग्रह होता रहता है!

इसी प्रकार बौद्धोंने 'प्रार्थनाचक्र' भी तय्यार किये हैं!! हाथमें पकडकर घुमानेके लिये तांबे, पीतल, चांदी आदिके पत्रोंके लगभग दो इंच ऊंचे और आठ इंच घेरेके सुन्दर नक्काशीवाले चक्र तैयार किये हैं। ऐसे चक्र वहां मोल मिलते हैं। उन्हें खरीद कर घुमाते रहनेसे बडा पुण्य-संग्रह होता रहता है। इस चक्रमें लगभग ५०० से १००० तक उपर्युक्त मन्त्रोंकी छपी हुई कागजकी घडी रखी रहती है। इस चक्रके एक घुमावसे इतना जप हो जाता है, यही भावना इन लोगोंकी रहती है। मुंहसे मन्त्रोच्चार करनेका कष्ट करनेकी आवश्यकता नहीं है। ध्यान कहीं भी हो, हाथ का चक्र घूमते ही पुण्यसंचय आरम्भ हो जाता है, ऐसा भक्तोंका विश्वास है!!

हिमालय और तिब्बतके बौद्ध मन्दिरोंमें मन्दिरों छोटे बडे अनुपातके अनुसार छोटे बडे चक्र खडे किये गये हैं। हमने बडासे बडा प्रार्थना चक्र लगभग आठ फीट ऊंचा और पन्द्रह फीट घेरेका देखा है। इसमें एक लाख मन्त्र छापकर रखे हुए हैं, ऐसा वहाँके एक भक्तने बतलाया। इतना बडा चक्र सरलतापूर्वक घुमाया जा सकनेके लिये वहाँ यान्त्रिक व्यवस्था भी की हुई है। इस कारण अत्यल्प प्रयत्नसे भी इतना बडा चक्र घूमने लगता है और प्रति घुमाव पर एक लाख जपका पुण्य मिलने लगता है!!

आरम्भमें दूसरे भक्त द्वारा किया गया जप इस चक्रमेंसे निकाल देना पडता है और इसके लिये जप शुरू करनेसे पूर्व यह चक्र उलटा घुमाना पडता है। १०-१५ बार इस प्रकार उलटा घुमा देनेपर दूसरेका जप इसमेंसे निकल जाता है और तब सीधा घुमानेपर नया जप शुरू हो जाता है और उसका फल घुमानेवालेको मिलने लगता है, ऐसी भक्तोंकी समझ है।

भारतके भक्तोंको यह युक्ति सम्भवतः अभीतक नहीं सूझी है। इसलिये इन्हें स्वयं नाम जपकी गर्जना करनी पडती है अथवा मन मनमें जप करना पडता है। बौद्धोंने इन परेशानियोंसे अपनेको मुक्त कर लिया है और यन्त्रोंद्वारा जप करलेनेकी युक्तिका आविष्कार कर लिया है! स्वर्गप्राप्तिका यह सुगम एवं समीपका मार्ग बौद्धोंने ही आविष्कृत किया है, इसमें संशय नहीं।

हमारे राष्ट्रमें ब्राह्मणों द्वारा मन्त्रजप करालेनेकी पद्धति है। ब्राह्मणको दक्षिणा देकर जपका पुण्य प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु बौद्ध तो इससे भी आगे बढ गये हैं। सचमुच उनकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी थोडी ही पडेगी।

जप का महत्त्व

शक्तिकी अभिवृद्धि करनेके लिये मन्त्र जपका साधन निःसंशय एक अत्यन्त सरल साधन है। जप द्वारा मानसिक एकाग्रता प्राप्त होती है और अर्थ की भावनाके साथ जप किया जाय तो उससे मनकी शक्ति भी अवश्य बढती है। किन्तु प्रार्थनाकी दीवारें और प्रार्थनाके चक्रोंका प्रयोग करनेका जो प्रकार है उससे क्या प्राप्त होगा, यह बात तो बिना विचार किये भी समझमें आ सकती है। हमारे देशमें आधुनिक भक्तिके ये इस प्रकारके रिवाज आज प्रचलित हैं।

ऐसा प्रतीत होता है मानो स्वर्गप्राप्तिके सरल एवं सुगम उपायोंकी स्पर्धा यहाँ हो रही है। वैदिकधर्मी जप किया

करते हैं। किन्तु उनकी पद्धति किस प्रकारकी थी, इसका विचार अब हम करेंगे।

जपस्तदर्थ भावनम्

वैदिक कालका जप इस मन्त्रके अर्थकी भावना मनमें स्थिर करके हुआ करता था। 'अहं ब्रह्मास्मि' 'मैं ब्रह्म हूँ' 'मैं निर्बल नहीं हूँ' 'मैं आनन्दमय हूँ' इस अर्थको सतत मनमें रखा जाना ही इस जपमें मुख्य है। मनकी भावनाको तदनुकूल बनाना ही यहाँ विशेषतः अभिप्रेत है। मनकी भावनाको इस प्रकारसे बनाना ही शक्तिसंचयका साधन है। मानस शास्त्रकी दृष्टिसे इस प्रकारके जपसे मनकी शक्ति बढती है, यह सिद्ध किया जा सकता है। 'मैं निर्बल हूँ' इस प्रकारकी भावना मनुष्यकी बन जाती है; अतएव वह निर्बल बनता चला जाता है। इसके बदले यदि 'अहं इन्द्रो न पराजिग्ये' 'मैं इन्द्र हूँ, मेरा पराभव नहीं हो सकता' (ऋग्वेद) इस मन्त्रका जप किया जाय और तद्वत् भावना बनाई जाय तो जप करनेवालेको अपनं शक्तिके बढनेका अनुभव अवश्य होगा। किन्तु इसके लिये मन्त्र पाठ करने, उसका अर्थ मनमें स्थिर करने, विरोधी विचारोंको मनमें न आने देनेकी कष्टसाध्य दक्षता सतत रूपेण रखनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। मनमें विपरीत भावनाके आते ही अनुष्ठान दूषित हो जाता है। इस प्रकारके अनुष्ठान वैदिक धर्मी स्वयं किया करते थे, दूसरोंको दक्षिणा देकर नहीं कराते थे।

'भगवान बुद्धने आकर लोगोंको इस झंझटसे मुक्त कर दिया और उनके लिये निर्वाण प्राप्तिका मार्ग सुगम बना दिया। आज येही विचार जनतामें फैले हुए हैं। किन्तु वास्तविक दृष्ट्या मानस शास्त्रके अनुसार यदि विचार किया जाय तो यही सिद्ध होता है कि यदि मानसिक शक्तिकी वृद्धि करनी हो तो उनके लिये स्वयं प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है। यह बात प्रार्थनाकी दीवारों अथवा चक्रोंद्वारा सिद्ध होनेवाली नहीं है। यह सच है कि वैदिक धर्मके कठोर अनुशासनसे लोग ऊब गए और यही कारण हुआ कि बुद्ध के सुगम साधन मार्गकी ओर वे चल पडे। गुरुपर विश्वास रखने मात्रसे तारण हो जानेका मार्ग कितना सरल है? वह मार्ग ईसाई और मुसलमानों द्वारा प्रचलित हुआ। जीवनभर चाहे जो कुछ करो, केवल अन्तमें पैगंबर पर विश्वास रखो और तुम्हारा तारण हो जावेगा, इस प्रकारके सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करनेवाले पन्थोंका निर्माण हो जाने पर यह बिल्कुल स्पष्ट है कि जनता ऐसे सरल मार्गको ही अपनावेगी। यही सर्वत्र हुआ है और इस प्रकार इन सरल मार्गोंने जनताको विनाश की ओर ढकेल दिया है।

वैदिक धर्म अनुष्ठानका धर्म था। उसका ध्येय जनताको कठोर अनुशासनमें रखकर जीवनकी सर्वाङ्गीण उन्नति करना था। कठोर अनुशासनसे सभी घबराते हैं और सरल मार्ग ढूंढनेका यत्न करते हैं। बुद्धने ऐसा सरल मार्ग ढूंढ निकाला और प्रार्थनादीवारों एवं प्रार्थनाचक्रोंतक उसकी प्रगति हुई। इसी प्रकार ईसा और महंमद पैगंबरोंने केवल विश्वास रखो, ईश्वरके ये प्रतिनिधि तुम्हारा तारण कर देंगे, आदि घोषणाओंका प्रसार करना आरम्भ कर दिया। मानो सरल मार्गको कोई स्पर्धा हो।

लोगोंको स्वर्ग चाहिये था। वह इतने सरल मार्गसे जब मिलने लगा तो कष्टसाध्य मार्गका अवलम्बन भला कौन करने लगा? इस कारण वैदिक धर्मावलम्बियोंमें जो आलसी स्वभावके थे उनके मन विचलित हुए और वे एकदम सरल मार्गकी ओर दौड पडे। इस प्रकारसे हिन्दु समाजकी क्षति होती देख हिन्दुधर्मीय साधुसन्तोंने नाम जपमात्रसे ही स्वर्ग अथवा मुक्ति मिलती है, ऐसा कहकर इस क्षत होते हुए समाजको उबारा और अपने धर्मकी रक्षाका प्रयत्न किया।

दो शालायें

इसका परिणाम समाज-रचनापर किस प्रकारसे पडा यह समझ लेना आवश्यक है। इसके लिये एक उदाहरण लिया जाता है। एक विद्या प्रचार प्रेमी व्यक्तिने एक पाठशाला खोली और यह नियम रखा कि यहाँ जो ९० प्रतिशत अंक परीक्षामें प्राप्त करेंगे वे ही उत्तीर्ण माने जायेंगे। इस शालाके समीपही दूसरे एक व्यक्तिने एक और शाला खोलदी और घोषित किया कि यहां जो विद्यार्थी आवेगा वह उत्तीर्ण होगा। इस कारण पहली शाला सूनी हो गई और दूसरी खूब चमक उठी। किन्तु किस शालामें विद्वान निर्माण होंगे? इसका जब कोई विचार करेगा तब वह इसी निर्णयपर पहुँचेगा कि पहली शाला ही हितावह है।

बौद्धोंका सरलमार्ग प्रार्थनाकी दीवारें और चक्र अथवा केवल विश्वास, ये सरल उपाय मनुष्योंका तारण करनेवाले

न होकर श्रेष्ठ अनुशासन ही मनुष्योंका तारण कर सकेगा इस बातको स्वतन्त्ररूपसे स्पष्ट करनेकी आवश्यकता नहीं है। हमारा देश जिस कारण शीघ्र जागृत नहीं होता तथा प्रयत्न करने पर भी वह स्वहितपराङ्मुखसा जो दीखता है, इसका यही कारण है कि वह इन सरल साधन मार्गोंमें उलझ गया है। अब हम यह देखेंगे कि यह सब किस प्रकार है।

अर्थकी भावना मनमें रखकर और तदनुरूप आचरण करके जपका अनुष्ठान करनेकी परिपाटी प्राचीनकालमें थी। उस समय ऐसा करनेसे क्या होता था यह देखेंगे।

'गोपाल' भगवान श्रीकृष्णका नाम है। 'गायोंका पालन करनेवाला' यह है इस शब्दका अर्थ। 'गोपाल' नामका जप किया जाय तथा 'गायोंका पालन किया जाय' इस अर्थका ध्यान किया जाय और फिर सचमुच गायोंका पालन किया जाय, उनमें के गुणोंकी वृद्धि की जाय, उनका सुधार किया जाय आदि अनुष्ठानोंपर आचरण करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे भगवान प्रसन्न होंगे और हमारे जीवनमें हमें गायका दूध पीनेको मिलेगा, हम पुष्ट एवं आरोग्यसम्पन्न होंगे, ये सब लाभ होंगे। जप और अनुष्ठानका यह प्रकार बुद्धपूर्वकालीन था। उसके बदले 'गोपाल' नाम खुदी हुई दीवारें हम बनावें, 'गोपाल' छाप कर बडे बडे चक्रोंमें रखकर उन्हें घुमावें या कोट्यवधि लोक 'गोपाल' नामकी गर्जना करें तो उससे भला क्या बन सकेगा? इस प्रकारके उपायोंसे हमारी उन्नति होगी। ऐसा विश्वास रखनेवाला समाज भला किस प्रकार उन्नत हो सकता है? आज इस पर हमें विशेष विचार करना चाहिये।

रामका नाम 'राम' है। (रमयति इति रामः) जो जनताको आनन्द दे वह राम। 'हरि' (दुःखं हरति इति हरिः) जनताका दुःख जो दूर करता है वह है हरि। इस प्रकारका प्रत्येक नाम मनुष्यके लिये एक एक कर्तव्यका उपदेश किया करता है। इस प्रकारके सहस्रावधि नाम हैं और इन नामोंसे मानवी उन्नतिका एक उत्तम एवं परिपूर्ण कार्यक्रम मनुष्योंके आगे रखा गया है, उस ओर न देख कर तथा उस कार्यक्रमको आचरणमें न लाकर केवल नाम नाम रटते बैठना किस प्रकार जनताका तारण कर सकता है? यह राष्ट्रके जीवन मरणका प्रश्न है। इसका विचार सभीको करना चाहिये।

गोरखपुरमें एक गीता संस्था है। उसने तथा उसके अनुयायी भक्तोंने 'राम' नाम कागज पर लिखनेका उपक्रम प्रारम्भ किया है। इस प्रकार 'राम' लिखकर रीमके रीम कागज पोष्ट द्वारा पहुँचते रहते हैं। हजारों आदमी हजारों रीमें लिखकर इस संस्थाको भेजते हैं तथा यह संस्था इन राम नामाङ्कित रीमोंका संग्रह करती रहती है। किन्तु 'राम' नामसे सूचित 'जनताके आनन्द संवर्धनका कार्य' कोई भी नहीं करता। इसी प्रकार 'गोपाल' नाम जपा और लिखा जाता है, परन्तु गायोंका पालन कोई नहीं करता। अनुष्ठानका उत्तरदायित्व किसी पर भी नहीं है; किन्तु जपोंका शोरगुल खूब होता रहता है। हमारे भारत राष्ट्रमें यह निष्क्रिय भक्ति मार्ग आज खूब प्रचलित है।

पूर्वका भक्तिमार्ग इसी प्रकारका था या नहीं? इस पर अब हमें जरा विशेष ध्यान देकर विचार करना चाहिये। हमारे दो भक्त हनुमान और अर्जुनने किस प्रकार भक्तिकी इसे अब हम देखेंगे। इन्होंने प्रार्थना दीवारोंका स्पर्श नहीं किया तथा प्रार्थना चक्र भी नहीं घुमाया। यह सब इनके चरित्रोंसे स्पष्ट हो जाता है। अब यह देखना है कि इन्होंने किस प्रकारकी भक्ति की इस पर हम अगले लेखमें विचार करेंगे।

सहस्रदल कमल

(लेखक— श्री॰ लालचन्द्र)

संसारके प्रत्येक देशका एक राष्ट्रीय फूल होता है। हमारे देशका राष्ट्रीय फूल कमल है। हमारे कवियोंने कमल फूल पर कविताएं लिखी हैं। हमारे साहित्यसेवियोंने कमलकी उपमाएं दी हैं। कमल सर्व सौन्दर्यसम्पन्न, मन-मोहक, चित्तको आल्हाद पहुंचानेवाला, नेत्रोंको तृप्त करनेवाला मन्द सुगंधिवाला सुन्दर सुरभ सुमन है। इसकी भीनी भीनी सुगंधि अद्भुत है। इसका सौन्दर्य अनुपम है। इसका स्वरूप मनोहर है, इसकी आकृति चित्त आकर्षक है। हमारा कमल सर्वांग सुन्दर अद्वितीय है। हमारे कमल जैसा मनोरम फूल और कोई नहीं। हमारा कमल फूल तालावमें, तड़ागमें, जोहड़में, सरोवरमें सभी जलाशयोंमें होता है। हमारा कमल परमोत्तम है, हमारा कमल सर्वोत्तम है। हमारा कमल परम सुन्दर है। हमारा कमल जलमें रहता है किंतु जल इसे छू तक नहीं सकता। फूल तो फूल, कमल पत्रतक जलमें रहता हुआ जलसे अछूता रहता है। जल इसे छू नहीं सकता। यह महामुनि समान निर्लेप रहता है और तो क्या, भगवानके समान यह जलमें रहता हुआ जलसे अलग रहता है। भगवान जगमें रहता हुआ जिस प्रकार जगसे न्यारा है, निर्लेप है, इसी प्रकार हमारा कमल परमतपस्वी है वह जलमें है परन्तु जल उसे छू नहीं सकता। हमारे तत्व-ज्ञानियोंने जीवनका आदर्श यही कहा है। "पद्मपत्र-मिवाभसा", जगमें रहो, परन्तु जगमें लिप्त न हो। जगमें सजग रहो।

सुन्दर नयनोंकी उपमा कमलसे दी जाती है। हम भगवानके चरणकमलोंकी नित्य आराधना करते हैं। भगवानके चरण कमल कहां हैं? वह उन दीनातिहीन हमारे दरिद्र भाई बहनोंमें और लाचार मातृपितृहीन बालकोंमें, तथा दुःखी विधवाओंमें जिनकी समाजने अव-हेलना की है, जिन्हें समाजने ठुकराया है, समाजने जिन्हें त्याग दिया है और परम दयालु पुत्रने जिन्हें अपनाया है, हृदयसे लगाया है। पुत्रके चरण कमल, ये ही आकिंचन लोग हैं, जो हमारी अपेक्षा चाहते हैं और हम उनकी उपेक्षा करते हैं। ये ही भगवानके चरण पद्म हैं। ये लोग समाजसे त्यक्त, समाजकी सेवामें तत्पर हैं किन्तु निष्ठुर समाज इन्हें अपनाता नहीं और भगवानके चरण हैं परित्यक्ता नारीमें, जिसे समाजने रौंदा है, वह अपेक्षा चाहती है, उपेक्षा पाती है। संक्षेपतः संसारके दुःखी और पीड़ितजन भगवानके चरण कमल हैं, वे सहानुभूति तथा समवेदना चाहते हैं। भगवानके चरण कमल हैं उन पथ-भ्रष्ट मानवोंमें जिनको समाजने ठुकराया है, अपनाया नहीं, उन्हें प्यारसे सीधा मार्ग बताया नहीं। भगवानके चरण कमल हैं उन पददलित दुःखी जनोंमें, जिनपर समाजके अत्याचार हो रहे हैं, ये सब मानव समाजसे मानवताका व्यवहार चाहते हैं, पर उन्हें मनुष्योचित बर्ताव मिलता नहीं। मानव अपने धर्मके गर्वमें चूर है, धर्मध्वजी है, दुःखी जन समाजके अन्यायमें चूर हो रहे हैं। निस्स्वार्थ-जनसेवा ही सच्ची जनार्दन पूजा है। आओ गिरे हुओंको उठावें, दुर्बलोंको सबल बनावें। विश्व कवि रवीन्द्र बाबूने भी कहा था।

"चरण पद्मे मम चित्त निस्पन्दित कर हे।
नन्दित कर नन्दित कर नन्दित कर हे॥"

एक हिन्दीके कविने इसका यों अनुवाद किया था—

"चरण कमलमें मनमधुकरको दो विराम स्वामी।
आनन्दित कर आनन्दित कर दास कृपा कामी॥"

इसका गद्य अनुवाद यों है,

"हे मेरे भगवान, मेरे चित्तको अपने चरण कमलमें निश्चल कर दो। हे मेरे प्रभो! मुझे आनन्दित करो, आनन्दित करो, आनन्दित करो।"

कमल हमारा राष्ट्रीय फूल है। कमलकी महिमा प्रत्येक भारतीयको मालूम होनी चाहिये। क्या अच्छा हो, यदि कोई भावुक कवि हमारे कमल फूलपर लिखे हुए हमारे कवियोंके उद्गारोंका संकलन कर दे। हमें अपने राष्ट्रीय फूलपर गौरव होना चाहिये।

कमल सब फूलोंका सरताज है। सबसे सुन्दर, सबसे विचित्र, सबसे विलक्षण यह सब फूलोंका महाराज है, सब फूलोंका राजाधिराज है। लिली फूलमें कोमलता है, चंपामें लावण्यता है, मुंगरेमें एक मादकता है और गुलाबमें सुन्दरता है, किंतु कमल सबसे गंभीर है, गौरवमय है, वह परमधीर है उससे सरका नीर शोभित है, उससे भोगीका चित्त समाहित है, उसमें अनुपम सौन्दर्य है, जो एकदम सत्यम् शिवम् सुन्दरम्की ओर संकेत करता है। भगवान जगतमें रहता हुआ जगतसे न्यारा है कमल जलमें रहता हुआ जलसे अछूता है।

गुलाबसे क्यारीकी शोभा है, चंपा बागीचेका प्राण है। बेला, जुही, चमेली, मुंगरा रातके समयकी शान है। रातकी रानीकी रातको ही सुगंधि फैलती है, केवडेकी सुगंधि लेकर पवन देवता स्वयं हैरान सा फिरता है। हारसिंगार उषाके संग मिलकर खेल खेला करता है। हार सिंगारमें अपनी शोभा है, परन्तु सरोज (कमल) सरवरकी जान है। भ्रमर कमलपर ही गूंजते हैं, उसपर लाखों उद्यान न्योछावर हैं।

किसी देशका मंजुल लाल माला विजय चिन्ह है, कहीं कहींपर आलिव जयश्रीका सूचक निराला मुकुटसा है। मेपल पत्र किसी देशकी कीर्तिका सूचक है और उस देशका प्यारा है। हमारा शतपत्र कमल शान्तिका द्योतक है। हमारा कमल सबसे विचित्र है। हमारा कमल सबका सरताज है। हमारा कमल भोगियोंका फूल है और यही हमारी भारतमाताके अनुकूल है। हमारी भारतमाता इस कमलको ही चाहती है इसे ही अपनाती है, वैसा सुन्दर और फूल नहीं है। हमारे कमलमें भोग है और फूलोंमें भोग है। हमारा कमल फूल सर्व सुन्दर परम मनोहर है।

किसी देशने सुन्दरताकी खान लिली चुनी है। कहीं अनोखी शान भरा हुआ गुलाब चुना गया है, कहीं थिसल कहीं शैमराक। कहीं अमूल्य आइरिस चुना गया है, परन्तु सहस्त्रदल कमल ही भारतका फूल है। कमल भारतका फूल, वह लक्ष्मी देवीका फूल है, वह सरस्वती देवीका फूल है, वह हमारा जातीय फूल है।

कमल कई प्रकारका होता है। नील कमल, पीत कमल, श्वेत कमल, रक्त कमल, अरुण कमल, तरुण कमल, हमारा कमल ही पुष्पराज है। कमल ही हमारा पुष्पराज है, कमल ही हमारा पुष्पराज है, कमल, हमारा राजकमल पुष्पराज है। सब फूलोंका राजा है। अमल कमल, धवल कमल, निर्मल सरके बीच कमल, भगवानके दोनों चरण सदृश कमल पुष्पराज है।

हमारे राष्ट्रीय फूल कमलकी महिमा अनुपम है। हम सबको अपने राष्ट्रीय फूल कमलका आदर करना चाहिये। कमल फूलका मान करना चाहिये। अब जब कि हम पूर्ण स्वतंत्र हैं हमें अपने प्यारे राष्ट्रीय फूल कमलको पूरा मान देना चाहिये। हमारा सरोज कितना सुन्दर कैसा महिमा वान, कैसा महान, साथ ही यह कैसा गौरवसंपन्न फूल हैं। हमारे कमलमें सौन्दर्य है, गंभीरता है, आनंद है, एक विचित्र आकर्षण है। हमारा कमल नयनाभिराम है। हमारा कमल हमें जीवन यज्ञकी शिक्षा दे रहा है। हमारा कमल हमें अनासक्तिभोगका पाठ सिखा रहा है, सुफल जीवनका रहस्य बता रहा है। हमारा कमल वास्तवमें अद्वितीय है, अनुपम है। इसके जैसा संसारका कोई फूल नहीं। हमारा कमल सर्वोत्तम फूल है।

इंगलैंडका राष्ट्रीय फूल गुलाब है, फ्रांसका लिली है, कनाडाका मेपललीफ है, स्काटलैंडका थिसल है। आयर-लैंडका शैमराक है। प्राचीन रोमका विजयी फूल लारेल रहा है। ग्रीसका आलिव रहा है। हमारे देशका राष्ट्रीय फूल कमल अलौकिक आभावाला है। आओ, हम अपने प्यारे कमलके गीत गाएं अपने प्यारे कमलको अपनाएं आओ, हम अपने खिले हुए हृदय कमलको भगवानके चरण कमलमें अर्पित करें और अपना जीवन सफल करें॥

श्री. पं. धर्मदेवजी सम्पादक
' सार्वदेशिक ' देहलीकी सेवामें

खुला निवेदन

निवेदक— श्री० गणपतराव बा० गोरे, ३७३ मंगलवार ' बी ', कोल्हापूर.

श्रीमानजी ! मई १९५२ के सार्वदेशिकमें ' श्री गोरेजीकी काली कल्पना ' शीर्षकवाली आपकी लिखी ' स्पष्ट संपादकीय टिप्पणी ' का अंशतः उत्तर मैंने १२ मईको लिख भेजा था और प्रार्थना की थी कि इसे जूनके सार्वदेशिकमें अपने प्रति-उत्तर सहित छापा जाय। पत्रमें यही प्रार्थना दुहराते हुए लिखा था कि यदि आप उसके उत्तरको अपनी टीका सहित सार्वदेशिकमें छापनेका आश्वासन दिलाएंगे तो ही मैं उत्तरका शेष भाग लिखकर भेज सकूंगा, अन्यथा नहीं ! परंतु, पत्रका उत्तर ४ नवम्बरतक भी नहीं मिला !

अतः विवश होकर आपकी ' स्पष्टसंपादकीय टिप्पणी ' का उत्तर ' वैदिक धर्म ' द्वारा प्रकाशित करा रहा हूं, कि सत्यासत्यका निर्णय पाठक स्वयं कर सकें।

२. श्रीमानजी ! आपने पृ० १०३ पर मुझपर लाञ्छन लगाया है कि मैंने ऋषिसे ' घोर अन्याय ' किया है. परंतु, प्रादेशिक सभाके सज्जन १९४१ से और आप १९५१ की जनगणनासे अपनेको ' आर्य हिंदु ' कहला रहे हैं। फिर भला सार्वदेशिकके मुखपृष्ठपर ' कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ' क्यों अबतक छापा जाता है ? अब आपका आर्यत्वसे संबंध ही क्या रहा है ? अब आपकी सभाओंको ' आर्य हिंदू प्रतिनिधि सभा ' और समाजोंको ' आर्य-हिंदू समाज ' ऐसे नाम धारण करने चाहिए। बताइए, ' आर्य हिंदू ' नामको आपने धारण करके ऋषिके मन्तव्यों २९,३० को ठुकराया है वा नहीं ? उनकी शिक्षा और स्वर्गीय पं० लेखरामजीकी गवेषणाओंका घोर विरोध करते हुए उनके साथ अन्याय किया है वा नहीं ?

जिसके विपरीत टीका की जाय उसे टीकावाला अंक भेजना साधारण संपादकीय शिष्टाचार समझा जाता है, परंतु शोक है कि आप मुझसे इतनी सभ्यता भी न वर्त सके ! मुझे तो मईका अंक न भेजा, परंतु जो प्रति कोल्हापूर आर्य समाजमें आया करती थी, वह भी आपने नहीं भेजी कि कहीं मुझे आपकी ' स्पष्ट संपादकीय टिप्पणी ' का पता न पड जाय ! टट्टीके आडमें शिकार खेलना इसीको कहते हैं ! क्या ऐसे लोग विश्वको आर्य बना सकेंगे ? कदापि नहीं ! मैं प्रसन्न हूं— आपकी टिप्पणीसे ।

हिलमिल खेलो ब्रह्मसे अन्तर रहे न रेख ।
समझेका मत एक है क्या पंडित क्या शेख ॥कबीर॥

आर्य समाजके ४ थे नियमपर आर्य लोग ही आचरण करेंगे, आर्य-हिंदू नहीं ! आइए ! आपकी टिप्पणीसे ' सत्यका ग्रहण करके असत्यका त्याग ' सब मिलजुलकर करें—

३. मई १९५२ के सार्वदेशिकमें पृ० १०२ से १०४ तक मेरे जिस लेखके खण्डनमें आपने टिप्पणी लिखी है वह मेरा लेख मार्चके वैदिक धर्म में छपा है फर्वरीके नहीं।

४. पृ० १०२ पर आप लिखते हैं कि मैंने " वेद मन्त्रोंके अर्थ करनेमें कल्पनाके घोडे बेलगाम दौडा दिए हैं और ऐसी असंगत तथा विचित्र कल्पनाएं की हैं, जिन्हें देखकर कोई भी विचारशील विद्वान हंसे बिना न रहेगा। "

पण्डितजी ! मैंने तो पदपदपर पद-छेद करके मंत्रोंके अर्थ देवता अनुसार किए हैं। मुझे विश्वास है कि आपके सिवा कोई ' विचारशील विद्वान ' ऐसे अर्थोंपर हंस नहीं सकता। हां, आपने अपनी टिप्पणीमें वेदमंत्रोंके जिस प्रकार अर्थ किए हैं उनपर वे अवश्य हंसेंगे ! अनेकों मंत्र लिख मारे परंतु देवता अनुसार पदच्छेद करके एक मंत्रका भी अर्थ दिखा न सके !! दिखाते कैसे ? ये मंत्र सबके सब सूर्यको ही एक उपास्य देव सिद्ध कर रहे हैं !!! अब इन मंत्रोंका सत्यार्थ बतानेका कार्य मुझे ही करना पडेगा।

सार्वदेशिकके पाठक बडे प्रसन्न होते यदि आप मेरी असंगत तथा विचित्र कल्पना 'ओंका युक्ति प्रमाण देकर खण्डन करते। जरा तो साहस किया होता ?

५. सार्वदेशिक पृ० १०३ स्तंभ १ पर आपने मेरे लेखके दो उद्धरण दिए हैं, परंतु, इनका भी खण्डन न किया! इसी स्थानपर आगे आप लिखते हैं कि ऋ. १।१६४।४६, वा. य. ४०।४। तथा ४०।५ जो "स्पष्टतया ईश्वरकी सर्व व्यापकता आदिका प्रतिपादन करते हैं, श्री गोरेजीने सूर्यपर लगानेका विचित्र प्रयास किया है जिससे कोई निष्पक्ष विद्वान् सहमत न होंगे।"

श्री पं० जी! आप मेरे लेखको यदि तीसरी बार पढेंगे तो आपको स्पष्ट लिखा हुआ दीख पडेगा कि "ऋ० १।१६४।४६ इन्द्रं मित्रं की देवता सूर्य है अतः इन्द्र सूर्यका ही एक नाम है।"

[वैदिक धर्म मार्च १९५२ पृ० ६५] अब निष्पक्ष विद्वान आपको बता सकेंगे कि **स्वयं वेद ही सूर्यको ईश्वर सिद्ध कर रहा है।** मैंने मंत्रको सूर्यपर अपनी इच्छासे नहीं लगाया।

इसी प्रकार यदि आप पृ० ६८ पुनः पढेंगे तो वहां भी आपको वा० य० अध्याय ४० की 'देवता आत्मा' स्पष्ट दीख पडेगी। ४०।४-५ में स्वयं न हिलाए जानेवाले और अन्योंको हिलानेवाले परमेश्वरका वर्णन है- जो सूर्य है निराकार परमात्मा नहीं! भुगोल खगोलके विद्यार्थी भी यही कहते हैं। आप जानते हैं कि **सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषः॥**

ऋ. १।११५।१॥ अर्थात् सूर्य ही चराचर जगतका आत्मा है, इसमें व्यापक हो रहा है। पुनः स्वयं वेदने ही सूर्यको परमेश्वर सिद्ध किया वा नहीं? अतः मंत्रोंको सूर्यपर लगानेका 'विचित्र प्रयास' मैंने तो नहीं किया, हां, आपने असत्य अवश्य लिखा।

श्री पं० जी! आप निराकार परमात्माको गतिमान् नहीं मानते। परंतु मैंने अ० १५।१।१ का श्री पं० जयदेवजीका अर्थ देकर पृ० ६६-७ पर सिद्ध किया है कि "परमेश्वर गति करता रहता है।" कहिए! श्री पं० जयदेवजी भी मेरे समान ही "मंत्रको सूर्यपर लगानेका प्रयास कर चुके हैं वा नहीं?" दुःख है कि आपने इसका नोटिस ही नहीं लिया!

६. आगे आप लिखते हैं "ॐ वाक् वाक् ॐ प्राणः प्राणः......इनका सूर्य वागिन्द्रिय और बाहु शक्ति है, सूर्य नासिका कान और हृदय है, इत्यादि कपोल कल्पित अर्थ करके गोरेजी पृ० ७० पर लिखते हैं कि 'पाठको! यहां स्वयं ऋषि दयानन्द जड माने जानेवाले शरीरके अंग प्रत्यंगको ॐ वा सूर्य सिद्ध कर रहे हैं।' ऋषि दयानन्दने ऐसा अर्थ पञ्चमहायज्ञविधि आदिमें कहीं नहीं किया। यह इनके साथ घोर अन्याय है।" [सार्वदेशिक मई १९५२, पृ० १०३]

उत्तर १. पं० जी सार्वदेशिकके पाठकोंकी दिशा भूल करा रहे हैं। पहले तो पं० जीने मेरे अर्थोंको तोड मरोड कर दिखाया है! "सूर्य वागिन्द्रिय और बाहु शक्ति है" ऐसा अर्थ मैंने किया ही नहीं! सिद्ध करें तो २५) दक्षिणा दूंगा।

दूसरी बात यह है कि पं० जी यदि ऋषि दयानन्दके किए हुए अर्थ बता देते तो पाठकोंको निर्णय करना सुगम हो जाता। सत्य तो यह है कि ऋषि दयानंदने पंचमहा-यज्ञविधिमें अर्थ किए ही नहीं! अर्थ ही नहीं हुए तो इनके साथ घोर अन्याय मैंने कैसे किया?

उत्तर २. पं० जी! मंत्रके अर्थ करनेसे पूर्व ओ३म् साकार सूर्य है वा निराकार पदार्थ, यह सिद्ध होना चाहिए। जून १९५१ के वैदिक धर्ममें मैंने यही सिद्ध किया था— विशेष पढिए "ओ३म् वा ब्रह्मको ऋषि दयानंद भी साकार सूर्य ही समझते थे," इस शीर्षक तले जब इस लेखपर किसीने आपत्ति न उठाई तो मैंने ॐ **वाक् वाक्** के अर्थ पहली बार जुलाई १९५१ और फिर मार्च १९५२ के वैदिक धर्ममें छपवाए। मार्चके अंकका अर्थ इस प्रकार है-

१ मेरा अर्थ— सूर्य वागिन्द्रिय और वाक् शक्ति है। सूर्य नासिका और प्राण शक्ति है। सूर्य आंख तथा दृष्टि वा दर्शन शक्ति है। सूर्य कान तथा श्रवण शक्ति है। सूर्य सृष्टिका तथा मेरे शरीरका केन्द्र है सूर्य। मेरा हृदय, मन, मेरी जीवात्मा, तथा वेद है। सूर्य वा ॐ मेरा कण्ठ है। सूर्य मेरा शिर है, ॐ वा सूर्य मेरी बाहुओंके लिए यश और बल है। ॐ वा सूर्य मेरे हाथकी हथेली और हाथकी पीठमें है। [वैदिक धर्म मार्च १९५२, पृ० ७० से]

अब पं० धर्मदेवजी बताएं कि- १. आपने मेरे अर्थको तोडा मरोडा है वा नहीं ? २. यह अर्थ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् ।। ऋ. २०।९०।१२ के अनुकूल तथा १०।९०।१ से ४ तकके अनुकूल है वा नहीं ? ३ यह अर्थ तच्चक्षुर्देवहितं ।। वा० य० ३६।२४ जिसकी देवता सूर्य है, उसके भी अनुकूल है वा नहीं। कोई वेद विरोधी नास्तिक ही इन अर्थोंको 'कपोलकल्पित' कह सकता है। ४. यदि ये अर्थ 'कपोल कल्पित्' हैं तो पं० धर्मदेवजी शुद्ध अर्थ बतानेका साहस क्यों नहीं करते ? ५. वै० धर्म जून १९५१ का अंक पढकर पं. जी बताएंकि मेरी 'कपोल-कल्पना' का सारा उत्तरदायित्व ऋषि दयानन्दपर पडता है वा नहीं ?

२. श्री पं० जी निम्न आर्यसमाजके विद्वानोंके किए अर्थोंसे मेरे अर्थोंकी तुलना करेंगे तो उन्हें पता पडेगा कि गत ३५ वर्षोंसे यही अर्थ आर्यसमाजमें भी प्रचलित हो चुके हैं। संक्षेपके लिए विशेष वाक्योंके ही अर्थ लिखता हूं-

क- श्री पं० वेदमित्रजीके अर्थ 'कर्तव्य दर्शन' १९३२ संस्करणसे— ॐ वाणी तथा जिह्वा... ॐ नाभि (धुन्नी)...ॐ दोनों भुजाओंसे यश और शक्ति, ॐ हाथोंकी हथेलियां, हाथोंकी पीठें।"

ख— १४ वीं बार १९३२ के 'भक्ति दर्पण' में श्री पं० बृहस्पतिजीने भी उपरोक्त अर्थ ही किए हैं। अब पं० धर्मदेवजी बताएं कि यह जिह्वा, नाभि, हथेलियां आदि बन जानेवाला ओ३म् साकार सूर्य है वा निराकार परमात्मा ? इनके अर्थ मेरे अर्थोंके समान हैं, परंतु अपनी साम्प्रदायी भावनाओंके कारण इन्हें वे 'कपोलकल्पित' कहनेका साहस नहीं कर सकते ! और देखिए—

ग— श्री पं० चमुपतिजीके अर्थ 'संध्या रहस्य' चतुर्थ बारसे— (ॐ) हे परमात्मन् ! हममें (वाक् वाक्) बोलनेकी शक्ति हो...... (ॐ) हे जगज्जनक ! हमारी (नाभिः) नाभि हो...... (ॐ) हे सम्पूर्ण बलदातः ! (बाहुभ्याम्) हमारी बाजुओंके लिए यश और बल हो, (ॐ) हे सर्वशक्तिमन् ! हमारी (करतलकरपृष्ठे) हाथकी हथेली और हाथकी पीठ हो।

कैसा भद्दा और व्याकरणकी दृष्टिसे भी अशुद्ध अर्थ है। परंतु एक आर्यसमाजी पंडितने किया है, अतः सर्वत्र सराहनीय समझा जाता है। श्री पं० धर्मदेवजी भी इसे 'कपोल कल्पित' कहनेका साहस नहीं कर सकते ! और देखिए—

घ. श्री पं० केशव शर्माकृत 'संध्याविज्ञान' प्रथम वार १९३६ से—

"हे परमात्मन् ! हमें वाक् संयमकी सहायता दीजिए... हे जगज्जनक ! हमारी नाभि हो......हे सम्पूर्ण बलदाता ! हमारे बाहुओंमें यश, बल प्राप्त हो। हे शक्तिसम्पन्न दाता ! हमारे हाथ अन्य हाथकी हथेलीके ऊपर हों, अर्थात् दान देनेवाले हों।" यह पुस्तक भारत गौ हितैषी प्रेस, पहाडी धीरज, देहलीमें ही छपी है। पाठक देखें कि स्वयं आर्यसमाजियोंने इन्द्रिय स्पर्श मंत्रके कैसे मनमाने अर्थ लगाए हैं ! और देखिए।

ङ— श्री पं० गंगाप्रसादजी उपाध्यायके अर्थ 'सरल संध्या विधि' में—

"(ओम् वाक् वाक्) ओ३म् अर्थात् ईश्वर ही मुख्यतः हमारी वाणी है। (ओम् प्राणः प्राणः) असली प्राण तो ओ३म् ही है, जिसके द्वारा मेरा समस्त शरीर अनुप्राणित है। (ॐ चक्षुः चक्षुः) असली आंख ओ३म् ही है। (ओम् श्रोत्रम् श्रोत्रम्) असली सुननेकी शक्ति ओ३म् ही है।" [सार्वदेशिक मई १९५२, पृ० १२० पर 'साहित्य-समीक्षासे']

श्री पं० धर्मदेवजी पुनः बतानेकी कृपा करें कि प्राण, वायु, आंख, सुननेकी शक्ति, वाणी, बन जानेवाला असली ओ३म् साकार सूर्य है वा निराकार परमात्मा ? कोई निष्पक्ष विद्वान बतानेकी कृपा करें कि क, ख तथा ङ में दिखाए अर्थोंसे मेरा अर्थ सुसंगत है वा नहीं ? यदि है तो मेरे अर्थोंके समान इन तीनों सज्जनोंके अर्थोंको भी पं० धर्मदेवजी 'कपोल-कल्पित' क्यों नहीं कह सकते ? यदि मैंने ऋषिके साथ 'घोर अन्याय' किया है, तो क्या इन्होंने नहीं किया ? अस्तु !

७. सार्वदेशिक पृ० १०३ पर श्री धर्मदेवजी लिखते हैं— "अद्वैतवादी भी सूर्यको अभिन्न निमित्तोपादान कारण नहीं मानते, यह तो गोरेजीकी ही नवीन किन्तु असंगत कल्पना है जो इन्होंने वेदोंपर थोपनेका दुस्साहस किया है।"

उत्तर— पं० जी ! मैं अद्वैतवादियोंका पक्ष नहीं ले रहा। स्वयं वेद सूर्यको अभिन्न निमित्तोपादान कारण सिद्ध कर रहे हैं। क, ख, ग के अर्थोंमें स्वयं आर्यसमाजी विद्वान सृष्टिका अभिन्न-निमित्तोपादान कारण मान रहे हैं। बताइए, यह सूर्य है वा निराकार परमात्मा?

८. वैदिक धर्म मार्च १९५२ पृ० ६६ पर मैंने ऋ २।१२।९ पर विचार करते हुए मंत्रके 'अच्युतच्युद्' पदके अनेक अर्थ बताते हुए लिखा है कि "सूर्य स्वयं अमर रहते हुए सृष्टि-संहार करता है।" इसपर पं० धर्मदेवजी मईके सार्वदेशिक पृ० १०३ पर लिखते हैं कि—

"यह भी एक कल्पना मात्र है, जो सर्वथा वेद विरुद्ध है।"

उत्तर— पं० जी यदि आंखें खोलकर पुनः वैदिक धर्म पढ़ेंगे तो उन्हें दीख जायगा कि मैंने अपनी बातको ऋ. २।१२।९ के प्रमाणसे सिद्ध किया है। आपको उचित था कि आप मेरे अर्थका खण्डन करते, अच्युतच्युत् पदके नए शुद्ध अर्थ बताते। यह तो आपसे हो न सका और 'कल्पना मात्र है, वेद विरुद्ध है' लिखकर पाठकोंकी दिशा भूल कर डाली! बताइए, कि ऋ. २।१२।९ का किया हुआ मेरा अर्थ ऋ. १।१६४।४६ के अनुकूल है वा नहीं? 'इन्द्र' सूर्यका नाम है वा निराकारका?

वा० य० ३२।८ में आत्माके लिए लिखा है कि उसमें प्रलयकालके समय सारा विश्व (एकनीडम्) एक घोंसला= गोल बन जाता है। उसमें प्रलयमें सब जगत (सं एति) एकत्र होता है और सृष्टिकालमें (च वि एति) उससे बाहर आता=पृथक् होता है। बताइए, यह प्रलयकारक और उत्पाद आत्मा साकार सूर्य ही है वा नहीं? ऋ. १।११५।१ में 'आत्मा' नाम सूर्यका ही बताया गया है निराकारका नहीं!

९. श्री पं० धर्मदेवजी लिखते हैं— "वेदोंके निम्न तथा अन्य सैंकडों मंत्रोंमें परमात्माको ही सृष्टिकर्त्ता, भर्ता तथा संहर्ता माना गया है, उसीको सूर्यका भी निर्माता और आधार बताया गया है—

हिरण्यगर्भः समवर्ततताग्रे भूतस्यजातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ऋ. १०।१२१।१॥

इस मंत्रमें परमात्माको हिरण्यगर्भके नामसे स्मरण करते हुए कि जिसके अंदर सब सूर्य चंद्रादि प्रकाशमान पदार्थ विद्यमान हैं, कहा है कि वही पृथिवी, आकाश और अन्तरिक्षको धारण करनेवाला है। हम उस सुख स्वरूपकी श्रद्धापूर्वक पूजा करते हैं।" [सार्वदेशिक पृ० १०३]

समीक्षा— १. जिस परमात्माको वेद सृष्टिकर्ता आदि मानता है वह साकार सूर्य वा हिरण्यगर्भ=सुवर्णिक ईश्वर+जीव+प्रकृतिका गोला वा केन्द्र है, आपका निराकार परमात्मा नहीं! निराकारको गर्भ नहीं होता।

२. इसी हिरण्यगर्भको वा आदि सूर्यको वेद स्वयंभू= स्वयं उत्पन्न होकर स्वसत्तासे विद्यमान रहनेवाला= self born and self existing बताता है- देखो वा० य० २।२६ तथा ४।२८। अतः वेदसे हो सिद्ध हुआ कि सूर्यका निर्माता और आधार कोई नहीं! क्यों? वही सृष्टि-कर्ता और सर्वाधार है, निराकार परमात्मा नहीं!

३ आर्यसमाज परमात्माको निराकार मानता है, और ऋषि दयानन्दने इस निराकार परमात्माको ओम् वा सूर्यको एक अंश ही सिद्ध किया है- देखो स० प्रकाश समु० १.

४. 'सब सूर्य चंद्रादि प्रकाशमान पदार्थ' आकाशमें रहते हैं, जिसे अ० १०।८।१६ 'में ज्येष्ठ ब्रह्म' कहा गया है। परंतु आर्यसमाज आकाशको परमात्मा नहीं मानता! अतः वह वेदमंत्र बताइए कि जो निराकार परमात्माके अस्तित्वको सिद्ध करता हो।

५. निराकार 'परमात्मा सूर्यका भी निर्माता और आधार है' आपकी इस प्रतिज्ञाको सिद्ध करनेवाला मंत्रमें एक भी वाक्य नहीं! झूठ ही सही, परंतु, सार्वदेशिकके वेद न जाननेवाले पाठक तो प्रसन्न हो गए ना? वेद जान-नेवाले अपना मत प्रसिद्ध करें तो ठीक।

६. पृथिवीको धारण करनेवाला सूर्य है, निराकार परमात्मा नहीं! पूछ लो किसी स्कूलके भुगोल खगोल जाननेवाले विद्यार्थीसे। एक बूढे अपढ मुसलमानसे पूछा तो उसने ऊपरकी ओर अंगुली उठा दी। यही सूर्य है।

७. मंत्रका जो ऊटपटांग अर्थ आपने लिखा है वह न तो मंत्रका शब्दार्थ है, न भावार्थ। मेरे विचारमें मंत्रका अर्थ निम्न प्रकार होना चाहिए—

(१) ऋषि-देवता विचार— ऋषि हिरण्यगर्भः प्राजापत्यः । देवता कः (प्रजापतिः) ऋषि वा मंत्रका द्रष्टा है ' प्रजापतिसे उत्पन्न सुनहरी अण्डा=सूर्य । देवता वा मंत्रमें प्रतिपादित् विषय है कः=प्रजापति=सूर्य। अर्थात् सृष्ट्यारंभमें जो आदि हिरण्यगर्भ वा सूर्य=स्वसत्तासे उत्पन्न हुआ था, वह स्वयं प्रजापति था कारण उसने लाखों सूर्य अपनेमेंसे बना डाले । उन्हींमेंसे एक हमारा सूर्य है, जो भी हिरण्यगर्भ वा ब्रह्माण्ड =वेदका अंडा, बडा अंडा कहलाता है । यह हमारे पृथिवीका सूर्य ही इस ऋ. १०।१२१ सूक्तका द्रष्टा वा उपदेशक है । उपदेशका विषय भी कः= प्रजापति=सूर्य ही है । सिद्ध हुवा कि स्वयम्भू सूर्य ही वेदवक्ता हैं और वे इस सूक्तमें अपना परिचय आप दे रहे हैं।

प्रश्न— ' कः '=प्रजापति निराकार परमात्मा क्यों नहीं ? साकार सूर्य ही क्यों ?

उत्तर— देवनागरी वर्णमालामें ' क ' व्यंजनोंमें प्रथम है । व्यंजन=consonant में निराकार साकार मिले रहते हैं । ठीक इसी प्रकार ' कः ' वा सूर्य भी व्यञ्जन है- साकार है, जिसमें ईश्वर जीव प्रकृति कहिए वा वेदके ३३ देव कहिए, वा सत् वा असत् दोनों समाए रहते हैं- देखो अ० १०।७।१०,१३ यह साकार सूर्य स्कम्भ भी कहलाता है । अतः 'कः' निराकार परमात्मा नहीं हो सकता–साकार सूर्य ही है । मंत्रमें इसी स्वयम्भू साकार सूर्य=आदि हिरण्यगर्भकी उत्पत्ति और उससे चराचर सृष्टिकी उत्पत्तिका वर्णन वैज्ञानिक रीतिसे बताया गया है।

(२) मेरा अर्थ- (अग्रे) सृष्ट्यारंभमें (हिरण्यगर्भः) एक सुवर्णिल अंडा=सूर्य (सम् अवर्तत) तीव्र गतिसे [आकाशमें अपनी कीलपर] चक्कर काटने लगा। (भूतस्य जातः) वही आपनेमेंसे चराचर सृष्टिको उत्पन्न करके (एकः पतिः आसीत्) उसका एकमेव पालक तथा स्वामी बन बैठा । (स) वही आदि हिरण्यगर्भ (इमां पृथिवीं उत द्यां) इन पृथिवी तथा आकाशको (दाधार) आज भी धारण कर रहा है। (कस्मै देवाय) उस आनन्दस्वरूप सूर्य देवके लिए ही (हविषा विधेम) हम हवन करके पूजा विधि किया करते हैं [निराकार परमात्माके लिए नहीं] ॥१॥

१ भावार्थ और स्पष्टीकरण— १. मंत्र निराकार परमात्माको हिरण्यगर्भ वा सूर्यका बनानेवाला नहीं बताता अपितु वह स्वयमेव प्रकट होकर आकाशमें अपनी कीलपर फिरने लगा ऐसा स्पष्ट कह रहा है । हां स्वयम्भू सूर्य जिन तत्वोंको लेकर एकत्र हुआ है, उन्हें वेद भी सूर्यका बननेवाला मानता है यथा— सूर्य अग्निसे उत्पन्न हुआ है ऋ. १०।५।७— कालसे उत्पन्न हुआ, अ. १९।५३ ८— प्राणसे उत्पन्न हुआ अ० ११।४।(६)१ इत्यादि । ऋ. १।१६४।४६ के अनुसार ये अग्न्यादि नाम सूर्यके ही हैं । पुनः सिद्ध हुआ कि सूर्य स्वयम्भू है । वा० य० ३२।३ में कहा है— न तस्य प्रतिमा अस्ति अर्थात् उसका बनानेवाला कोई नहीं । ऋ. २।१२।९ में बताया है कि वह इन्द्र वा सूर्य ही विश्वका (प्रतिमानं) बनानेवाला, (बभूव) स्वसत्तासे बन गया है । अब पण्डितजी बताएं कि वेदके अनुसार ' निराकार परमात्मा ' का अस्तित्व वे किस प्रकार सिद्ध करते हैं ? इस मंत्रसे तो सिद्ध न कर सके ।

२. भूतस्य जातः का यह अर्थ नहीं कि उस आदि हिरण्यगर्भने अपनेमेंसे पृथिव्यादि ग्रह और उनपर चराचर सृष्टि बना डाली । सृष्टिके सब कार्य क्रमपूर्वक होते हैं । अतः उस आदि हिरण्यगर्भने सर्व प्रथम अपनेमेंसे लाखों सूर्य बनाए । इन सूर्योंने अनेकों ग्रहमालाएं और उनपर चराचर सृष्टि उत्पन्न की । हमारा सूर्य उस आदि हिरण्यगर्भसे उत्पन्न होनेके कारण हिरण्यगर्भ ही है, और हम सूर्यसे उत्पन्न होनेके कारण ही ओम् प्रकाश, सूर्यदेव, उदयभानु, उषा, सरस्वती, पार्वती, सूर्या, भानुमति आदि नामोंको धारण करते हैं । मुसलमान भी, शम्सुल्हक्, शम्सुद्दीन प्रसन्नतासे कहलाते हैं । अब पं० जी बताएं कि निराकारवादी अपनेको निराकार देव, निराकारा देवी, अदृश्य सिंह, अदृश्या सिंही, असम्भूत राम, असम्भूती क्यों नहीं कहलाते ? उत्तर यही है कि वे अपनेको ' निराकार ' से उत्पन्न नहीं मानते ! और न ' निराकार परमात्मा ' का अस्तित्व वेदसे आजतक किसीने सिद्ध किया है।

३. एकः पतिः (पतति-पतित)= ' एक नीचे उतरनेवाला ' सूर्य है। ' निराकार परमात्मा ' नामक पदार्थ नहीं ! ' पत् ' का दूसरा अर्थ है ' उडना ' वा ' वायुमें संचार करना ' वह वायुमें वा आकाशमें उडनेवाला पुनः सूर्य ही

सिद्ध होता है, निराकार परमात्मा नहीं ! 'पत्' धातुका तीसरा अर्थ है 'क्षितिजसे नीचे उतरना '= To Set or Sink (below the horizon)= अस्त होना । यह अस्त होनेवाला 'पालक' पुनः सूर्य ही सिद्ध हुआ, निराकार परमात्मा नहीं ! 'पत्' के अर्थ नीचे उतारनेवाला, गिरानेवाला, दृष्टिपात करनेवाला, उड़ानेवाला है [देखो आपटेका कोष] इन सब कार्योंको करनेवाला पुनः सूर्य ही 'एक पति' कहला सकता है, 'निराकार' कदापि नहीं !

४. हिरण्यगर्भ वा सूर्य ही 'स्वयम्भू' है। जो स्वयं बन सकता है वही अपनेमेंसे लाखों सूर्य भी उत्पन्न कर सकता है-अपनेको विभक्त करता है, देखो ऋ. १०।१९०।१ से ४। 'निराकार परमात्मा' यदि उसका अस्तित्व हो, तो भी अपनेमेंसे साकार सृष्टि कदापि उत्पन्न कर नहीं सकता।

५. ऋषि दयानंदका मत कि सभी लोक लोकान्तरोंमे एक ही प्रकारके वेद हैं, वेदोंके अनुकूल तभी सिद्ध होगा, जब सूर्यको ही सृष्टिकर्ता और वेदोंका उत्पादक माना जायगा। बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि निराकारवादी कहलानेवाले विद्वान सूर्यदेवको सृष्टिकर्ता मानते जा रहे हैं, उदाहरणार्थ-

क—'विश्व ज्योति' मासिक पत्रिका होश्यारपुर (पू० पंजाब) के अप्रैल १९५२ के अंकके मुख पृष्ठपर समुद्रसे ऊपर उगते हुए सूर्यकी आकृति छपी है। अर्थात् विश्व-ज्योति=विश्वमें वेदोंका प्रादुर्भाव करनेवाला सूर्य है निराकार परमात्मा नहीं ! ऋ. १०।१७०।४ में सूर्यकी 'विश्वकर्मन् ज्योति' का वर्णन है। ऋ. १।५०।४ में 'विश्वचक्षा' कहा है। ऋ. १०।१७०।३ में सूर्यको 'ज्योतिषां ज्योतिः' कहा है।

ख- विश्व-ज्योतिके उपरोक्त अंकमें श्री पं० धर्मदेवजीकी ता० १२ जनवरी १९५१ को दी गई कवितामय शुभ कामना निम्न प्रकार छपी है—

"आच्छन्नं तमसाखिलं जगदिदं घोरेण संहारिणा।
अज्ञानेन सहाभिमानममतामात्सर्यदोषाः स्थिताः॥
छित्वा वेदखेः प्रचण्ड किरणैरज्ञानजन्यं तमः।
विश्वज्योतिरिदं करोतु भुवने शान्तेः प्रसारं सदा॥

"यह सारा संसार घोर अंधकारसे ढका हुआ है, और अज्ञानके साथ साथ अभिमान ममता तथा मात्सर्य आदि दोष बढ़ रहे हैं ॥ वेद-ज्ञानरूपी सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंसे 'विश्व-ज्योति' अज्ञानसे होनेवाले इस अन्धकारका नाश करके सदा शान्तिका प्रसार करे ॥"

यह है पं० धर्मदेवजीकी हार्दिक कामना ! वे साकार सूर्यकी किरणोंको ही वेद ज्ञानकी देनेवाली और अज्ञानको हटानेवाली मानते हैं, 'निराकार परमात्मा' को नहीं ! जो वेदोंको प्रकट करनेवाला है, वही सृष्टि-उत्पादक भी है। अतः सिद्ध हुआ कि पं० धर्मदेवजी भी कितेक आर्यसमाजियोंके समान हृदयसे तो सूर्यको ही सृष्टिकर्ता सृष्टि संहरता मानते हैं !! यही वेदादेश है, यथा—

ऋषि प्रस्कण्वः काण्वः। देवता सूर्यः।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ ऋ. १०।५०।१ ॥

मेरा अर्थ- (त्यं) उस (सम्) समानतया सर्वत्र (जातवेदः) वेदको प्रकट करनेवाले (उदु) उदय होनेवाले देवं) देवको केतवः वहन्ति) उसीकी किरणें उठाए फिरती हैं। विश्वाय) सारे विश्वको (सूर्यम् दृशे) सूर्य दिखानेके लिए ॥ १ ॥

भावार्थ— सूर्यसे उत्पन्न सारा जगत अपने स्वामीका दर्शन कर सके इसलिए सूर्यकी किरणें सूर्यको एक सेकंडमें १९ मीलकी तीव्र गतिसे बहाए ले जा रही हैं ॥ १ ॥ परंतु इतनी सुविधा होनेपर भी परिणाम क्या निकला ?

पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः॥
अ० १०।८।१४।

उस जगदुत्पादकको आंखोंसे तो सभी देख लेते हैं, परंतु मनसे नहीं जानते कि यही ईश्वर है ॥ १४ ॥

पाठको ! 'सम्' पद इस मंत्रमें ऋषि दयानन्दके इस विचारकी पुष्टि कर रहा है कि लोक-लोकान्तरोंमें एक ही प्रकारके वेद हैं।

६. कस्मै— जिस ईश्वरको निराकारवादी भी आनन्द स्वरूप मानते हैं उसे वेद साकार सूर्य सिद्ध कर रहा है।

७. वेदादेश है कि हवन करके साकार सूर्यकी ही पूजा की जाती है, निराकारकी नहीं ! लेख बढ रहा है अतः ऋ. १०।१२१।१ पर अधिक नहीं लिखता।

१०. आगे सार्वदेशिकके पृ० १०३-४ पर श्री संपादकजीने नौ और वेदमंत्र लिख मारे हैं, परंतु पदच्छेद करके अर्थ एकका भी बता न सके! फिर भला उत्तर किसका दिया जाय? इन मंत्रोंमें एक ऋ० १०।८।१६ भी है, जिसका संक्षिप्त विचार धारा ९ के अन्तर्गत ४ में हुआ है। श्री सम्पादकजीका अर्थ है— "सूर्य जिसकी शक्तिसे उदित होता और जिसमें अस्त होता है, उसीको मैं सबसे बडा (ब्रह्म) मानता हूं। उससे बडा और उससे परे कुछ नहीं। कोई उसका उल्लंघन नहीं कर सकता। परमेश्वरने पूर्वकल्पवत् सूर्य चंद्रादिको बनाया।" कितना अशुद्ध अर्थ है! परंतु ऐसे अर्थ करनेवालोंकी ही आर्यसमाजमें प्रतिष्ठा है। पूछनेवाला ही कोई नहीं! श्री धर्मदेवजी! ऋ० १०।८।१६ में आकाशका वर्णन है, निराकार परमात्माका नहीं! 'परमेश्वरने…सूर्य चंद्रादिको बनाया' यह वाक्य आपकी मिलावट है!

११. उपसंहार— श्री पं० धर्मदेवजी! आप ऋ. १०।१२१।१ से सिद्ध न कर सके कि सूर्यको निराकार परमात्माने बनाया है। आर्यसमाजके सिद्धान्तके विरुद्ध आप सूर्यको वेदोंका उत्पादक मानते और आकाशको निराकार परमात्मा समझते हैं। आपको इतना भी पता नहीं कि 'ॐ वाक् वाक्' के अर्थ स्वयं आर्यसमाजी विद्वान् किस प्रकार आर्यसमाजके मन्तव्यके विरुद्ध कर रहे हैं। आप संस्कृत भाषाके कवि हैं, उत्तम वक्ता हैं, परंतु दुःख है कि आपको वेद मन्त्रोंका देवता अनुसार पदच्छेद करके शब्दार्थ करना नहीं आता। ऋ. १०।१२१।१ का अर्थ जिस प्रकार मैंने किया है, उसी प्रकार यदि आप मंत्रोंके अर्थ कराके छापेंगे, और उसकी प्रति मुझे भेजेंगे तो ही आपके लेखका उत्तर दिया जायगा। मार्च १९५१ के वैदिक धर्ममें मैंने ऋ. २।१२।९ पर ही विचार किया है, परंतु आपकी टिप्पणीमें आपने इसे छुआ तक नहीं! प्रतिज्ञाएं की, पूर्ण एक भी न हुई!

गोरक्षण और गोभक्षण

(लेखक— पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

• • • • • • •

इस समय भारतवर्षमें गोरक्षणका आन्दोलन चल रहा है। विधिमण्डलमें 'गोवध प्रतिबंधक' नियम बने ऐसी मांग देशभरमें की जारही है। ऐसे समयमें कई विद्वान् प्राचीनकालमें लोग गो-मांस खाते थे, इस प्रकारके लेख लिख रहे हैं! इनकी बुद्धिमत्ताकी मैं प्रशंसा करता हूं और साथ साथ उनके धैर्यकी भी। क्योंकि तमाम देशभर के आन्दोलनके विरोधमें ऐसी आवाज उठाना विना धैर्यके नहीं हो सकता!

हम जो 'गोवधप्रतिबंधक' विधिनियम बने, ऐसा कहते हैं, वह आजके लिये कह रहे हैं, दस हजार वर्ष पूर्वके राष्ट्रके लिये नहीं। इस समय हमारे भारत राष्ट्रमें गोरक्षण होनेकी अत्यंत आवश्यकता है, क्योंकि भारतकी खेती बैलोंसे होती है और गायबैलोंका गोबर खादके लिये अत्यन्त उत्तम है। गौका दूध भी पुष्टिके लिये उत्तम है, इसलिये गोरक्षण हो और गोवंशका सुधार हो ऐसा हमारा कहना है।

ऐसे समयमें हजारों वर्षोंके पूर्व लोग गोमांस खाते थे ऐसा कहना अयोग्य है। उस समय वे जो करते थे, वह उनके लिये योग्य था, इसलिये वे करते थे। आज हमारे लिये क्या योग्य है वह हमें देखना चाहिये और जो योग्य हो, वही करना चाहिये।

प्राचीन समयमें (१) नियोग था, (२) गणविवाह था, (३) नियतसमयका विवाह था, ये सब हमने छोड दिये हैं। प्राचीन समयमें था, इसलिये आज ये सब प्रथाएं चलनी चाहिये, ऐसा किसीका आग्रह नहीं है।

इतना होनेपर भी प्राचीन समयमें शिष्टसंमत प्रथा क्या थी, इसका विचार करना चाहिये और वह विचार हम करते हैं।

योगशास्त्रमें कहा है—

> गोमांसं भक्षयेन्नित्यं पिबेदमरवारुणीम्।
> कुलीनं तं अहं मन्ये इतरे कुलघातकाः॥

हठयोग प्रदीपिका

"नित्य गोमांस खाओ, मद्यपान करो। जो ऐसा करेगा उसको मैं कुलीन मानता हूं, अन्य जो ऐसा नहीं करते वे कुलघातकी हैं।" यह तो मांसभक्षणकोंके लिये अच्छा हुआ। गोमांस खाओ और मद्य पीओ! पर अपने अपने शास्त्रके तथा परंपराके कुछ विशेष संकेत होते हैं। उन संकेतोंके अनुसार ही इन वाक्योंका अर्थ करना चाहिये। इसी तरह पूर्वोक्त श्लोकका अर्थ योगके ग्रन्थोंमें उनके संकेतोंके अनुसार दिया है वह देखिये—

> गोशब्देनोदिता जिव्हा, तत्प्रवेशो हि तालुनि।
> गोमांसभक्षणं तत्तु महापातकनाशनम्॥

ह० यो० प्र०

'गो का अर्थ जिव्हा है, इसका प्रवेश खेचरी मुद्रामें तालुमें करते हैं, इसको गोमांस भक्षण कहते हैं। इससे महापातक नष्ट होते हैं।'

जिव्हाका नाम संस्कृत भाषामें 'गो' है। इसका प्रवेश उलटी करके तालुमें करना और वहां वैसी जिव्हा रखना इसका सांकेतिक नाम 'गो-मांस-भक्षण' है और इस योगमुद्रामें रहनेसे इन्द्रग्रन्थीसे जो अमृतरसका स्राव होता है उसका प्राशन करना 'वारुणी पान' है। इससे दीर्घायु प्राप्त होती है।

इस तरह शास्त्रसंकेत न देखनेसे अर्थका अनर्थ हो जाता है। इसलिये प्रार्थना यह है कि गोमांसभक्षण विषयक लेख लिखनेवाले इन संकेतोंकी ओर कृपा करके ध्यान दें।

✻

गर्भ भी खाते थे

वेदमें गर्भ खानेका उल्लेख है देखिये—

गर्भान् खादन्ति केशवाः तान् इतो नाशयामसि ।

अथर्व० ८।६।२३

" बालवाले लोग गर्भोंको खाते हैं, उनको यहांसे हम नष्ट करते हैं । " ऐसे उल्लेखोंसे गर्भोंको खाना शिष्टसंमत था, या धार्मिकोंका मन्तव्य था अथवा वेद धर्मको इष्ट था, ऐसा सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि इनको समाजसे दूर या विनष्ट करो ऐसा यहां कहा है । इसी तरह—

गोवधकर्त्ता वध्य है

यदि नो गां हंसि, यद्यश्वं, यदि पूरुषम् ।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नो सोऽवीरहा ॥

अथर्व० १।१६।४

" यदि तू गायका, घोडेका अथवा मनुष्यका वध करेगा तो तुम्हें सीसेकी गोलीसे मारेंगे । "

यहां गोवध करनेवालेको वधदण्ड लिखा है । तथा मनुष्यवधके बराबर गोवधके लिये समान दण्ड लिखा है । यजुर्वेदमें भी—

मृत्यवे गोघातं । वा. य. ३०

" गोघातकको मृत्युदण्ड दो " ऐसा कहा है । यदि गोवधकर्त्ताको मृत्युदण्डका विधान है तब तो गोवध कौन कर सकेगा ? इसका विचार लेखक करें ।

' गौ ' के लिये ' अघ्न्या ' और ' बैल ' के लिये ' अघ्न्य ' पद सब संहिताओंमें मिलकर साडे पांच सौ वार प्रयुक्त हुआ है । वेदोंकी जितनी संहिताएं आज हैं उन सब में ' अघ्न्या ' पद गौका वाचक इतनी बार आया है । कोई अन्य पद इतनी वार वेदोंमें नहीं आया है । ' अ+घ्न्या ' का अर्थ ' वध जिसका नहीं करना चाहिये अर्थात् अवध्य ' ऐसा ही है । ' Not to be killed ' यही इस पदका अर्थ है । यदि वैदिक आर्योंके भक्षणमें गोमांस था तो इस पदका इतना प्रयोग क्यों हुआ ? और यह नाम भी वेदोंमें इतनी वार क्यों आया है ? इसका दूसरा कोई अर्थ नहीं है । गायों और बैलोंका पालन करनेवाले पर्वतोंका नाम भी ' अघ्न्य ' वेदमें है । पर्वत भी तोडने नहीं चाहिये, इसका कारण इतना ही है कि पर्वतोंके घाससे गौओं और बैलोंका रक्षण होता है । गौओंकी पालनाके लिये पर्वतोंका रक्षण करनेका आदेश बताता है कि, गौका पालन आवश्यक है । पर्वतोंका नाम ' गोत्र ' (गो+त्र) है, गौका रक्षण पर्वत करते हैं, इसलिये गौका तारण करनेवाले पर्वत राष्ट्रमें सुरक्षित रहने चाहिये ।

आर्योंके गोत्र

आर्योंमें गोत्र होते हैं । इस समय ब्राह्मणोंको अपने गोत्रोंका पता है । वसिष्ठ, गौतम, कश्यप आदि गोत्र नाम प्रसिद्ध हैं । जिनको गोत्रका पता नहीं, उनका गोत्र काश्यप माना जाता है अर्थात् सब आर्योंके गोत्र होते हैं ।

' गोत्र (गो+त्र) का अर्थ ' गौओंकी पालना करनेवालोंके कुल या वंश । ' प्राचीन आर्योंके वंश जिन ऋषि मुनियोंसे प्रारंभ हुए उन ऋषियोंने यह प्रतिज्ञा की थी कि ' हम तथा हमारे वंशज लोग गौका रक्षण करेंगे । ' गोत्रका यह भाव है । आज दुर्दैवसे उन्ही गोत्रोंमें उन्ही गोरक्षणकी प्रतिज्ञा करनेवालोंके वंशोंमें ऐसे विद्वान् हुए हैं कि जो गोभक्षण करनेका प्रचार कर रहे हैं !! निःसन्देह यह देखकर उन गोत्रप्रवर्तक ऋषियोंका दिल फट जायगा ! गोरक्षणकी प्रतिज्ञा करनेवालोंके ये गोत्र हैं । गोरक्षण यह वंशस्थापक की प्रतिज्ञाका अभिमान है ।

चरककी साक्षी

आयुर्वेदका प्रामाणिक ग्रन्थ चरक नामसे प्रसिद्ध है । इसमें अतिसार रोगकी उत्पत्ति कैसे हुई इसके वर्णनमें ऐसा कहा है—

आदिकाले खलु यज्ञेषु पशवः समालंभनीया बभूवुः, नालम्भाय प्रक्रियन्तेस्म । अतश्च प्रत्यवरकालं पृषध्रेण दीर्घसत्रेण यजमानेन गवालंभः प्रवर्तितः । तं दृष्ट्वा प्रव्यथिता भूतगणाः। तेषां चोपयोगात् ... अतीसारः समुत्पन्नः पृषध्रयज्ञे । चरक चिकित्सा अ० १९

' आदिकालमें निःसन्देह यज्ञोंमें पशुओंकी पूजा होती थी, वध नहीं किया जाता था । पश्चात् बहुत समय व्यतीत होनेपर पृषध्र राजाने दीर्घसत्रमें हठसे गौओंका वध शुरू

किया। इसको देखकर सब प्राणियोंको बडा ही दुःख हुआ। और इनके मांसका उपयोग करनेसे इसी यज्ञसे अतीसार रोग उत्पन्न हुआ।'

इस चरक ग्रन्थके वचनमें स्पष्ट शब्दोंमें यह कहा है कि आदिकालमें यज्ञमें पशुवध होता ही नहीं था। अर्थात् यज्ञमें मांसका हवन नहीं होता था। पृषध्र राजाने हठसे विद्वानोंकी संमति न सुनकर गोमांसका हवन किया, जिससे अतीसार रोग उत्पन्न हुआ, जो रोग इस समय भी लोगोंको कष्ट दे रहा है। गौका वध देखकर सबको बडा दुःख हुआ। अर्थात् गोवधके लिये जनताकी संमति नहीं थी। राजाने हठसे यह कुकर्म किया। इस वचनसे यह बात स्पष्ट होती है, कि आदिकालमें यज्ञमें पशुवध नहीं होता था, गोवध तो निःसन्देह ही नहीं होता था। चरककी साक्षी निष्पक्ष साक्षी है। उसने अतिसारकी उत्पत्ति बताने के लिये यह लेख लिखा है।

अब वेदकी साक्षी देखिये—

मुग्धा देवा उत शुनायजन्त
उत गौरङ्गैः पुरुधायजन्त ॥ अथर्व० ७।५।५

'मूढ याजक कुत्तेसे और गौके अवयवोंसे अनेक प्रकार यज्ञ करते हैं।' ये मूढ होते हैं। जो मूढ होते हैं वे गोमांससे तथा कुत्तेके मांससे हवन करते हैं, यह ज्ञानियोंका तो कार्य नहीं हो सकता। इस मन्त्रपर सायनका भाष्य देखिये—

"मुग्धा कार्याकार्य-विवेकरहिता यजमानाः। शुनापि अयजन्त। अखाद्यानां परमावधिःश्वा। तथा गोरूपपशोः अङ्गैः अवयवैरपि अयजन्त। अवध्यानां परमावधिः गौः। पुरुधा बहुधा अयजन्त। एकदा करणे प्रमादाज्ञानादिकृतं इति संभावना भवति। अतस्तन्निरासाय पुरुधेत्युक्तम्। सर्वदा शुनकगवादिरूपैः पशुभिः मूढा यज्ञं कुर्वन्ति।

अथर्व सायनभाष्य ७।१।५

सायनाचार्य इस मन्त्रपर अपने भाष्यमें लिखते हैं कि- "जिनमें कर्तव्य और अकर्तव्यका विचार नहीं होता उनको मुग्ध कहते हैं। ऐसे मूढ याजक कुत्तेके मांससे यजन करते हैं। न खानेयोग्य पदार्थकी परम सीमा कुत्ता है। उसी तरह वे मूढ याजक गौके अंगोंसे भी यजन करते हैं। अवध्य प्राणियोंकी परम सीमा गौ है। इस गौके अंगोंसे भी वे मूढ याजक यज्ञ करते हैं। प्रमादसे एक वार करते हैं ऐसा नहीं है, परन्तु यही निंद्य कर्म वे अनेक वार करते हैं।'

यह मूढ याजकोंका कार्य है। ज्ञानी याजक ऐसा नहीं करते। मूढ याजकोंका यह कर्म है इतना कहने मात्रसे इस कर्मकी निंदा हुई है और यह गोवधरूप कर्म नहीं करना चाहिये यह सिद्ध हुआ। अवध्य प्राणियोंमें परम सीमा पर गौ है। अर्थात् किसी समय किसी कारणसे गौका वध नहीं होना चाहिये। जो गोवध करेंगे वे मूढ कहे जायगे। वह धर्म सज्जनोंका नहीं कहा जायगा।

अर्थात् श्रेष्ठ सज्जन गौका वध नहीं करते थे। यह सिद्ध हुआ। दुर्जन क्या करते थे, इसका विचार दुर्जन करें। हमें उसका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

भरद्वाज आश्रम

लेखक— पं. विन्ध्याचलशर्मा शास्त्री, प्रधानमन्त्री, गोरखपुर

प्रायः ६, ७ वर्ष हुए होंगे माननीय डाक्टर कैलाशनाथ काटजू महोदयने उपर्युक्त शीर्षकके सम्बन्धमें एक अभिनव विचार, प्रयागके "साप्ताहिक भारत" में प्रकट किया था। उस समय मैंने आपके नाम पत्र लिखकर जो विचार सूचित किया था, उसीको आज परिवर्धित स्वरूप देकर प्रस्तुत लेख प्रारम्भ कर रहा हूँ।

डा० काटजू कहते हैं कि प्रचलित प्रयागमें जो भरद्वाज आश्रम श्री जवाहरलाल नेहरूजीके घरके सामने है, वह अप्रामाणिक है। क्योंकि भरद्वाज आश्रमसे चित्रकूटकी दूरी वाल्मीकीय-रामायणके अनुसार केवल दश कोस ही बतलाई गई है। बतलानेवाले महर्षि भरद्वाजजी हैं। जो कहते हैं कि महाराज! मेरा जाना हुआ रास्ता है। मैंने अनेक बार इसी मार्गसे वाल्मीकी आश्रमका चंक्रमण किया है। देखिये वाल्मीकीय रामायण-अयोध्या काण्ड, सर्ग ५४—

एकान्ते पश्य भगवन् आश्रमस्थानमुत्तमम्।
रमते यत्र वैदेही सुखार्हा जनकात्मजा ॥ २६ ॥
एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरद्वाजो महामुनिः।
राघवस्य तु तद्वाक्यम् अर्थग्राहकमब्रवीत् ॥२७॥
दशक्रोश इतस्तात गिरिर्यस्मिन् निवत्स्यसि।
महर्षिसेवितः पुण्यः पर्वतः शुभदर्शनः॥ २८ ॥
गोलाङ्गूलानुचरितो वानरर्क्षनिषेवितः।
चित्रकूट इति ख्यातो गन्धमादनसन्निभः॥ २९ ॥
प्राविविक्तमहं मन्ये तं वासं भवतः सुखम्।
इह वा वनवासाय वस राम! मयासह ॥ ३२ ॥
मधुमूलफलोपेतम् चित्रकूटं व्रजेति ह ॥ ३८ ॥
वासमौपयिकं मन्ये तव राम! महाबल! ॥३९॥
गम्यताम् भवता शैलश्चित्रकूटः स विश्रुतः।
पुण्यश्च रमणीयश्च बहुमूलफलायुतः ॥ ४० ॥

सर्ग ५५

भरद्वाजो महातेजा रामं सत्यपराक्रमम्। ॥ १ ॥
गंगायमुनयोः सन्धिमादाय मनुजर्षभ!।
कालिन्दीमनुगच्छेतां नदीं पश्चान्मुखाश्रिताम् ४
तत्र यूयं प्लवं कृत्वा तरतांशुमतीं नदीम् ॥ ६ ॥
ततो न्यग्रोधमासाद्य महान्तं हरितच्छदम् ॥ ७ ॥
समासाद्य च तं वृक्षं वसेद्वातिक्रमेत् वा।
क्रोशमात्रं ततो गत्वा नीलं प्रेक्ष्य च काननम् ॥८॥
सल्लकीबदरीमिश्रं राम! वन्यैश्च यामुनैः।
स पन्था चित्रकूटस्य गतस्य बहुशो मया ॥ ९ ॥
रम्यो मार्दव युक्तश्च दावैश्चैव विवर्जितः।
इति पन्थानमादिश्य महर्षिः संन्यवर्तत ॥ १० ॥

यह प्रमाण वाल्मीकीय रामायणका ही है। अध्यात्म रामायण तथा तुलसीदास कृत रामचरित मानसमें - दश क्रोशकी चर्चा नहीं है। और न तो जंगल मार्गका ही वर्णन विशेष भयंकर रूपका किया गया है।

आप "दशक्रोश इतस्तात" के आधारपर कहते हैं कि सम्प्रति प्रचलित प्रयागसे प्रचलित चित्रकूटकी दूरी राज मार्ग द्वारा ७० मील, और कौवाडडानसे ६० मील पड़ती है। अतएव 'भरद्वाज-आश्रम,' प्रचलित प्रयागराजमें न होकर प्रचलित चित्रकूटमें ही होना चाहिये। क्योंकि प्रचलित चित्रकूटसे ९-१० कोस दक्षिण लालापुरमें महर्षि वाल्मीकिके आश्रम होनेका प्रमाण स्थानीय किम्वदन्तीके आधारपर माना जाता है। फलतः प्रचलित चित्रकूटको यदि प्रयागराज मान लें, और वहींपर भरद्वाज आश्रम तथा संगम भी मान लिया जाय तो दश कोसकी दूरीपर स्थित लालापुरका वाल्मीकि-आश्रम चित्रकूट मान लेनेसे सारा कार्य बन जायगा। अन्यथा वर्तमान प्रयागसे वर्तमान चित्रकूट ६०, ७० मील पडनेसे दश कोससे अधिक हुआ। अतः वाल्मीकीय रामायणके अनुसार, वर्तमान भरद्वाजाश्रम तथा प्रयागराज दोनों सिद्ध नहीं किये जासकते हैं। आपके मतसे प्रयागमें भरद्वाजाश्रम तथा संगमका होना चिरकालसे प्रसिद्ध है। किन्तु प्रयाग शब्द-साधारणतः तीर्थस्थानवाचक एक शब्द है। जहां कहींपर भी तीर्थस्थान रहा है उसे प्रयाग कहा जाता था। क्योंकि

वहाँ बहुधा बडे बडे यज्ञ हुआ करते थे। इसी आधारपर पहाडोंमें ऐसे बहुतसे तीर्थस्थान हैं, जिनके नाममें प्रयाग शब्द आता है। देव प्रयाग तथा रुद्र प्रयाग, इसके प्रमाण हैं। डा० काटजू कहते हैं कि नदियोंकी धारायें प्रायः समय समयपर बदला करती हैं। सम्भवतः चित्रकूटमें ही किसी कालमें गंगा-यमुनाका संगम रहा हो। किन्तु आपको यह भी मानना चाहिये कि नदियोंकी धाराओंका रूपान्तर एक दो मील तथा चार मील तक इधर उधर जासकता है। ६०, ७० मीलतक धारायें रूपान्तर नहीं करती हैं। " पुरा यत्र स्रोतः पुलिनम् अधुना तत्र सरिताम् " महाकवि भवभूतिजी धाराके स्थानपर श्रीरामद्वारा किनाराका होना ही प्रमाणित करते हुए " निवेशः शैलानां तदिद-मिति बुद्धिं द्रढयति " पर्वतोंकी स्थिरतापर विश्वास करते हैं। शास्त्रकारोंने भी पर्वतको स्थावर माना है। किन्तु आपके लालापुरका चित्रकूट पर्वत थोडे ही कालमें लुप्त हो गया क्या आश्चर्य है। अतः धाराओंके प्रवाह परिवर्तनकी बात बुद्धिपूर्वक नहीं है।

दूसरी बात यह कि गंगा-यमुनाके तटवर्ती प्रसिद्ध प्रसिद्ध नगरोंकी स्थितिका भी वर्णन पुराणोंमें प्राचीन कालसे सुना जाता है। परन्तु हरिद्वार, प्रयाग, काशीके साथ चित्रकूटका नाम गंगातटवर्ती नगरोंकी सूचीमें नहीं देखनेमें आता है। एतदर्थ आप वाल्मीकीय रामायणको ही देखिये— ' महर्षि भरद्वाजजी जो कि चित्रकूटको प्रयागसे दशकोस बतलाते हैं वही भरद्वाजजी कहींपर भी चित्रकूटमें गंगायमुनाकी बात नहीं करते। वहाँ तो उन्हें-

" महर्षि सेवितः पुण्यः पर्वतः शुभदर्शनः
गोलाङ्गूलानु चरितः वानरर्क्षनिषेवितः।
चित्रकूट इति ख्यातः गन्धमादन सन्निभः।
गम्यतां भवताशैलश्चित्रकूटः स विश्रुतः।
पुण्यश्च रमणीयश्च बहुमूल फलैर्युतः। "

यही सब चीजें दिखलाई पडती हैं। और न तो भरद्वाजजी भरद्वाजाश्रम तथा संगमको ही चित्रकूटमें होना सिद्ध करते हैं। यदि चित्रकूटमें ये स्थान होते तो उनकी चर्चा वाल्मीकि-जी अवश्य करते। अतः चित्रकूटमें संगम तथा भरद्वाजा-श्रमका देखना दिग्भ्रमतुल्य ही है।

आप कहते हैं कि प्रयागसे डेढ दिनमें ही चित्रकूट, श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीता ६०, ७० मील नहीं जा सकते थे। और यदि वाल्मीकिके प्रमाणानुसार दश कोसकी बात मान लें तो डेढ दिनमें जाना कोई आश्चर्यजनक नहीं होगा। दश कोसकी बात बार बार आने जानेके कारण भरद्वाजजीको स्वयं ज्ञात थी। जिसे उन्होंने " गतस्य बहुशो मया " के कथन द्वारा बतलाई है। अतः चित्रकूटमें ही भरद्वाजाश्रम रहा और प्रयागमें भरद्वाजाश्रमका होना प्रमाण विरहित है।

साथ ही वर्तमान चित्रकूटसे ९, १० कोस दक्षिण स्थित लालापुर ही प्राचीन चित्रकूट है। क्योंकि स्थानीय किम्ब-दन्तीके आधारपर वहीं वाल्मीकि-आश्रम रहा। रामायण द्वारा वाल्मीकि आश्रम चित्रकूटमें सिद्ध है ही।

आपकी उपर्युक्तियोंसे तो मैं कदापि सहमत नहीं हूँ। किन्तु " दशक्रोश इतस्तात " " गतस्य बहुशो मया " के प्रमाणको स्वीकार करता हूँ। केवल युक्तिका ही विरोधी है। अतः आपकी युक्तियोंका खण्डन आपके ही प्रमाणको आधार मानकर दृढतापूर्वक कर रहा हूँ।

माननीय काटजूजीने प्रयाग शब्दको साधारण तीर्थ-स्थान वाचक एक शब्द माना है। किन्तु प्रयाग शब्द तीर्थ-स्थानवाचक किसी भी कोष ग्रन्थसे प्रमाणित नहीं है। यदि आपके मतानुसार पहाडी तीर्थ देव प्रयाग तथा रुद्र प्रयागको ही आधार मान लें तो ऐसे बहुतसे तीर्थस्थान हैं, जैसे-मथुरा, अयोध्या, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, गया, वैद्यनाथ धाम, इत्यादि किन्तु किसीके भी नामान्तमें प्रयागका पुछल्ला नहीं लगा है। और चलिये पहाडोंमें भी बदरिकाश्रम केदारनाथ प्रभृति अनेक पहाडी तीर्थस्थान हैं किन्तु कहीं भी प्रयागान्त नाम नहीं सुनाई पडता। औरकी बात दूर जाने दीजिये। वर्तमान चित्रकूट जो कि आपके मतसे कभी प्रयागराज रहा, जहाँपर आज भी आप संगम तथा भरद्वाजा-श्रम सिद्ध करनेपर तुले हैं, उस चित्रकूटके नाममें भी प्रयागका पुछल्ला नहीं है।

यदि किसी कालमें रहा तो आज उसने कौनसा अपराध किया कि उससे प्रयागराजत्वका अधिकार छीन लिया गया। वस्तुतः चित्रकूटको कभी भी कोई प्रयाग न तो मानता था, न आजही कोई मानता है। और न कभी आगे ही युक्ति एवं प्रमाणविरुद्ध बातें कोई मान सकेगा।

यदि आपके मतानुसार ही जैसा कि आप स्वयं वर्तमान प्रयागको भी एक तीर्थस्थान मानते ही हैं। तो भी प्रचलित प्रयागराजको तीर्थराज कहा जाता है, जो कि अनेक पुराणेतिहास ग्रन्थों द्वारा प्रमाणित है। जिसे आपके भी सम्पूर्ण प्रयागों तथा मेरे तो सम्पूर्ण तीर्थोंकी प्रधानता प्राप्त है। अतः इलाहाबाद केवल प्रयाग ही नहीं अपितु प्रयागराज है। जिसे तीर्थराज प्रयाग भी कहते हैं। आप एक किंवदन्तीके आधारपर लालापुरमें वाल्मीकि आश्रम तो स्वीकार कर रहे हैं किन्तु प्रयागराजमें वर्तमान भरद्वाजाश्रमको रामायणादि प्रमाणोंके आधारपर भी नहीं मान रहे हैं यह बात उचित नहीं प्रतीत होती है कि कहीं तो आप किम्वदन्तीतक मानने लगे और कहींपर चिरकालसे प्रसिद्ध तथा रामायणादि पुराणेतिहास सिद्ध प्रमाणतकको प्रमाण कोटिमें न मानें।

यहाँपर यह भी विचार योग्य है कि प्रचलित चित्रकूटसे ९, १० कोस पड़नेके कारण ही जब लालापुरको चित्रकूट स्थित वाल्मीकि-आश्रम माना जारहा है, तब आप जब कि गंगा-यमुनाके प्रवाहका रूपान्तर इतना लम्बा चौड़ा अर्थात् ६०, ७० मीलका मानते हैं तो यह भी माननेमें विरोध नहीं ही करेंगे कि—

श्रीरामकालीन चित्रकूटका पर्वत एवं जंगल भाग जब रहा होगा, जिसे काट छांट कर वर्तमान स्थान जनपद-योग्य बनाया गया होगा जहाँपर आप किसी समयमें संगम, प्रयाग, तथा भरद्वाजाश्रमका होना प्रमाणित करना चाहते हैं। वह प्राचीन चित्रकूट आजके चित्रकूटकी सीमासे दूरतक बढा चढा अवश्य रहा होगा। यदि न्यूनातिन्यून वर्तमान चित्रकूटसे दो दो कोसकी चतुर्दिक दूरी मानकर प्राचीन चित्रकूटकी सीमापरिधि सिद्ध की जाय तो प्रचलित चित्रकूटको कुछ उत्तर और आना पड़ेगा। तो फिर लालापुर स्थित वाल्मीकि-आश्रम चित्रकूटसे दश कोससे भी कम पड़ जायगा। जिससे वह आपके ही मतसे दश कोससे कम पड़नेके कारण चित्रकूट-स्थित-वाल्मीकि-आश्रम नहीं सिद्ध हो सकेगा। एक तो वह यों ही दश कोस नहीं हो पा रहा है। अब तो और भी दश कोससे कम पड़ जानेसे भला कहाँ दश कोस हो पायेगा। अतः आपकी ही युक्तिसे प्रचलित चित्रकूट और प्रयाग दोनोंकी मरम्मत हो गई। यह तो वही बात हुई कि गणेशजी बनाने चले पर बना डाले वानर।

" विनायकं प्रकुर्वाणोरचयामासवानरम् "

एक बात और सुन लीजिये। आपको डेढ दिनमें ही ६०, ७० मीलकी यात्रा करना आश्चर्य लग रहा है। पर आपको श्री भरतजीका-अयोध्यावासी जनताके साथ दो दिनमें प्रयाग पहुँचना तथा प्रयागसे एक दिनमें ही चित्रकूट पहुँचना कैसा लगेगा, यह पता नहीं। यह बात भी रामायणकी ही है। श्रीरामचन्द्रजी तो पाँचवें दिन चित्रकूट पहुँचे, तो भी गंगातटतक रथ द्वारा दो दिनमें आये। मार्गमें स्वागतार्थ किम्वा दर्शनार्थ समागत जनसमूहसे मिलते जुलते लग गया था। गंगा पार करनेपर तीसरे दिन प्रयाग वासकर वहाँसे डेढ दिनमें चित्रकूट पहुचे। किन्तु भरतजीके तीन ही दिनमें जनसमूहके साथ पहुँच गये इसे आप क्या मानेंगे।

अच्छा इन बातोंको भी जाने दीजिये। आपकी एक बात और सुन लीजिये। आप कहते हैं कि- श्रीरामके साथ सीताजी शनैः शनैः चलती थीं, अतः डेढ दिनमें ९, १० कोस पार कर ली होंगी। आपको श्री सीताजी द्वारा डेढ ही दिनमें ६०, ७० मीलकी यात्रा करनेपर विश्वास नहीं होता।

एतदर्थ मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आजकल इस युगमें भी ऐसे अनेक लोग हैं, जो २० कोससे अधिक एक दिनमें चलते हैं, और वे भी दौड़ते हुए अगवानीके घोड़ोंकी तरह नहीं चलते हैं। दीनताके कारण बेचारोंको ' द्रव्याभावमें सवारियाँ नहीं मिलतीं ' उन्हें विवश होकर पैदल चलना ही पड़ता है। अतः अब आप ही सोचें कि जब डेढ दिनमें आजकलके लोग भी ६०, ७० मील जा सकते हैं तो श्रीरामका जाना कोई आश्चर्यजनक नहीं हो सकता है। क्योंकि गंगापार करनेपर श्री सीताको भी श्री भरद्वाजाश्रमतक पैदल जाना पड़ा था। दूसरे दिन जंगल मार्गसे चित्रकूट जाना पड़ा। बीचमें पलास, बाँस तथा बेरके सघन वृक्षोंके जंगलों और वानर, भालुओं जैसे अनेक जंगली जानवरों द्वारा भयंकर मार्गसे सभीत चलनेके कारण चालमें द्रुतताका आजाना, कोमलांगियोंके लिये भी आसान हो जाता है। जिससे सीता भी डेढ दिनमें ही अपने पतिके

साथ वनश्रीका विलोकन करती हुई आनन्दपूर्वक श्रम-रहित होकर, किम्वा समीतताके कारण अतिशीघ्र जंगल पारकर वाल्मीकि-आश्रमपर पहुँचकर निर्भयता तथा शान्ति प्राप्त की जासकती है। इस उद्देश्यसे श्री सीताके भी ६०, ७० मील चलनेमें कोई 'शङ्का' नहीं की जा सकती है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि सशंक प्राणी अतिद्रुतगतिसे शीघ्र रक्षार्थ आश्रयप्राप्तिके उद्देश्यसे चलता है। मुझे सन् १९४२ ई० के आन्दोलन कालकी उस घटनाका स्मरण हो आता है, जब कि हमारे ग्राममें जब मैं जेलमें था भयप्रदर्शनार्थ गोरी सेना आई थी तब बहुतसी नवविवाहिता बहुओं जिन्हें दरवाजेपर निकलनेतकका अवसर नहीं मिला था उन असूर्यम्पश्याओंतकने पुरुषाकृति धारण कर सशंक हो कोसोंदूर भगकर धर्म, एवं लज्जा, की रक्षा करती हुई निर्भयता प्राप्त किया। तो इसमें कोई-आश्चर्य नहीं कि डेढ़ दिनमें श्री सीताजी ६०, ७० मीलकी दूरी नहीं पार कर सकती थीं।

अब एक प्रकारकी और युक्ति लीजिये:- आजकल लोग जैसे ह्रस्वकाय वामनाकृति होते चले जा रहे हैं, ऐसे ही प्राचीन कालमें नहीं होते थे। ऐसा सुना जाता है कि त्रेता युगमें मनुष्य १४ हाथके होते थे। अर्थात् अतिदीर्घकाय होते थे। कमसेकम कलियुगी मनुष्योंके वर्तमान आकृतिकी तिगुना तो रही ही होगी। और उसी परिमाणमें हाथ पैर भी रहे ही होंगे। यह नहीं कि शिर ५ सेरके तौलमें विशाल रहा तो पैर पिपीलकके पैर जैसे रहे। साथ ही उचित शरीर मानके अनुसार शक्ति भी रही होगी। तभी तो सीताने लीलापूर्वक अतिविशाल वज्रतुल्य शिवजीके धनुषको उठाकर अन्यत्र रख दिया था, और जिसे छूते छूते श्रीरामने तोड़ भी डाला था। यह तो है श्रीराम एवं श्री सीताका वाल्यकालीन अतुलनीय शक्तिका दिग्दर्शन। तो जब युवावस्थामें दोनों वनयात्रा कर रहे थे उस समय उनकी शक्ति डेढ़ दिन आरामसे ६०, ७० मील चलनेकी क्या नहीं रही होगी? अवश्य रही होगी।

हां तो उन लोगोंके पैरका विस्तार यदि आजकलके लोगोंके, पैरसे तिगुना ही मान लिया जाय तो कोई अनुचित न होगा। फिर क्या है आजका ६०, ७० मील हम लोगोंके लिये भले ही अधिक हो! जो कि बिना सवारी एक पग भी पैदल चलना पहाड़पर चलना समझते हैं- और सामर्थ्यके अभावमें चल भी तो कैसे सकते। किन्तु आजकलके ६०, ७०, मील, इस परिमाणके आधारपर श्रीराम एवं श्री सीताके लिये दश कोस ही पड़े होंगे। क्योंकि उनके पैरका विस्तार हम लोगोंसे तिगुना मान ही लिया गया है। अतः "दश-कोश इतस्तात" वाली बात भी ठीक होगई।

अच्छा एक प्रमाण और भी लीजिये जिससे सभी सन्देहोंका निराकरण हो जायगा। मेरे विचारसे डा० काटजूको जो यह महासन्देह हो गया है। उसका एक कारण है। इसीसे उन्हें प्रयाग, संगम तथा भरद्वाजाश्रम सभी चित्रकूटमें दिखलाई पड़ने लगा। वह है आधुनिक दूरीमानको प्रमाण मानकर प्राचीन श्रीरामकालीन दूरीमानसे तुलना करना। इसीसे इस भ्रम महोदधिमें पड़ना पड़ा।

आइये यहाँपर आधुनिक दूरीमानको प्राचीन दूरीमानसे तुलना कर वाल्मीकीय रामायणके दश कोसकी दूरी आधुनिक-कालमें क्या पड़ेगी इसे देखा जाय।

यद्यपि श्री वाल्मीकि-कालीन प्राचीन दूरीमानका पता उपलब्ध नहीं है, तथापि यथोपलब्ध सामग्रीसे ही विचार किया जाय तो प्राचीन दूरीमानके सम्बन्धमें प्रसिद्ध ज्योतिषी श्री भास्कराचार्यजीका मत लीलावती ग्रन्थमें एक श्लोक द्वारा इस प्रकार प्रकट होता है-

यवोदरैरङ्गुलमष्टसंख्यै-
र्हस्तोऽङ्गुलैर्षड्गुणितैश्चतुर्भिः
हस्तैश्चतुर्भिर्भवतीह दण्डः
क्रोशः सहस्रद्वितयेन तेषाम्।

इसी बातको लक्ष्यकर वाचस्पत्य कोष, सटीकामरकोष, शब्दार्णव कोष, केशवकृत कल्पद्रुम कोष, तथा शब्दार्थ चिन्तामणि कोष प्रभृति अनेक ग्रन्थोंमें सर्वत्र कोशमानके विषयमें:—

"क्रोशः धनुसहस्रे द्वे, धनुर्हस्ताश्चतुष्टयम्"

यही लिखा गया है। अस्तु श्री भास्कराचार्यके अनुसार ४००० गजका एक कोस तात्कालिक मनुष्योंके हस्तमानसे होता है। अथवा श्री भास्कराचार्यके समयमें था। तो आजकलके ३५२० गजके कोससे ४८० गज अधिक पड़ता है। यद्यपि यही वाल्मीकि-कालीन भी दूरीमान है या नहीं इस सम्बन्धमें साधिकार घोषणा तो विद्वान ही कर सकेंगे, मैं तो कुछ कहनेका साहस नहीं कर सकता, तथापि यथोपलब्ध प्रमाणसे ही प्रमाण मानकर विचार करें तो दश कोस

आजकलके दूरीमानके आधारपर जो कि हम लोगोंके ही प्रार्थोंसे सम्मत है। इस प्रकार ११ कोस ४ फर्लांगका होता है। यदि इसीको श्रीरामकालीन हस्तमानसे सिद्ध करनेके लिये त्रिगुणित करें तो ३३½ कोस ४ फर्लांग पडेगा। जिससे आजका ३३½ कोस फर्लांग श्रीरामकालीन दश कोस ही रहा होगा। इसीसे दशक्रोश इतः कहा गया। तब यदि श्रीरामकालीन चित्रकूट जिसकी परिधि वर्तमान चित्रकूटसे गव्यूतिमात्र चतुर्दिक कल्पित की गई है। आपके मतसे जो प्रयाग है। वहाँसे ११ कोस ४ फर्लांगपर आपका लालापुर नहीं पड रहा है। फिर ३३½ कोस ४ फर्लांगपर तो किसी कालमें भी नहीं सिद्ध किया जा सकता है। इस आधारपर आपके चित्रकूटको चाहे प्रचलित माने अथवा प्राचीन ही माने कभी भी प्रयागराज नहीं प्रमाणित किया जा सकता। और न लालापुर ही आपकी युक्तिसे वाल्मीकि-आश्रम ही सिद्ध किया जा सकता है। या तो आपके चित्रकूटको कुछ और उत्तर आना पडेगा, अथवा बेचारे लालापुरको ही कुछ और ही जगह जाना पडेगा। तब तो काम चलेगा। अन्यथा नहीं हो सकता। हमारे विचारसे अन्यका लालापुर भी प्राचीन चित्रकूटके अन्तर्गत किसी भी भागमें आसकता है। जहाँपर सम्भवतः महर्षि वाल्मीकिजीका आश्रम भी रहा हो। जैसा कि आप एक किम्बदन्तीके आधारपर वाल्मीकि आश्रम मान ही रहे हैं। पर आपके मतसे दश ही कोस होना चाहिये। लेकिन दश कोसका यह तो ३३½ कोस ४ फर्लांग होता है। फलतः आपके मतसे चित्रकूट तथा भरद्वाजाश्रम दोनों की दुर्दशा हो गई। यह तो वही बात हुई कि—

किसी मूषकने भक्ष्य पदार्थ प्राप्ति की कामनासे किसी सपेराके सॉंप रखनेवाली सन्दूकका ढक्कन किसी प्रकार खोला भी तो वहाँपर उसे भक्ष्य पदार्थ मिलनेके बदले अपने प्राणोंका त्याग कर स्वयमेव उस सर्पका ही भक्ष्य बन जाना पडा।

" भक्ष्याशयाऽहिमञ्जूषा दृष्ट्वाऽखुस्तेन भक्षितः।"

इस प्रकारकी विषमताने आपकी ही युक्तियों द्वारा आपके चित्रकूट तथा प्रयाग दोनोंकी खूब मिट्टीपलीद की।

किन्तु यदि आप हमारे मतसे सहमत हो जाते हैं। और यदि मेरा मत युक्तियुक्त हो तब, ३३½ कोस ४ फर्लांगको श्रीरामकालीन दश कोस ही पडनेसे चित्रकूट एवं प्रयाग दोनों अपने अपने स्थानपर रहते हुए आपके मनसे स्थानान्तरजन्य दुर्दशासे त्राण पा सकेंगे।

अस्तु मैं वर्तमान प्रयागराजको ही प्रयागराज मानता हूँ। आज भरद्वाजाश्रमके अगल बगल जिन कोठियोंको देख रहे हैं क्या आजके दो तीन सौ वर्ष पूर्व वहाँपर इसी प्रकारकी बस्तियाँ थीं। इन बस्तियोंके पूर्व वहाँपर फूस फास झाडियाँ नहीं थी क्या? तो फिर त्रेतायुगमें वर्तमान भरद्वाजाश्रमके स्थानपर ही महर्षि भरद्वाजजीका आश्रम रहा हो इसमें आश्चर्य किस बातका है।

एक बात और ध्यान देने योग्य है कि प्रत्येक प्रयाग-यात्री तीर्थराज प्रयागके स्मरणके साथ साथ, त्रिवेणी वेणी-माधव, सोमनाथ, भरद्वाज, वासुकि एवं अक्षयवट-इन सभी देवताओंका स्मरण करता है। जो कि झूंसी, यमुना-ब्रिज, किला, यूनिवर्सिटी, तथा त्रिवेणीतट इन सभी स्थानोंके चंक्रमणके अनन्तर दर्शन किया जाता है। अतः जहाँपर इन सभी देवताओंके दर्शनस्थान प्राप्त हों, जिससे श्रद्धालुभक्त दर्शन कर सकें, वही हमारा तीर्थनायक प्रयाग हो सकता है। प्रचलित चित्रकूटमें डा० काटजू महोदय कभी भी इन सभी देवस्थानोंको प्रमाणित नहीं कर सकते। फलतः चित्रकूट, कभी भी प्रयाग, संगम तथा भरद्वाजाश्रमका स्थान नहीं हो सकता है।

अतः अनेक शत सहस्राब्दियोंसे अपने अनेक पूर्व पुरुषों द्वारा सदा पूजित अथच चिरपरिचित प्रयागराज जिसे आज इलाहाबाद कहा जा रहा है। उसे ही संगम तथा महर्षि भरद्वाजजीका आश्रमस्थान मानता हूँ।

अन्ततोगत्वा—

त्रिवेणीं माधवं सोमम् भरद्वाजं च वासुकिम्।
वन्देऽहमक्षयवटम् प्रयागं तीर्थनायकम्॥

को नमस्कार करते हुए सत्यासत्य समीक्षक विवेकी पाठकोंसे प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग इस सम्बन्धमें अपने अपने मतोंसे सूचित कर अनुगृहीत करें। इति शम्।

वैदिक धर्म

(वर्ष ३३)

विषयानुक्रमणिका

उत्तीर्ण परीक्षार्थियोंका अभिनन्दन

प्रारम्भिणी, प्रवेशिका, परिचय तथा विशारद परीक्षाओंमें अच्छे अङ्क प्राप्त करके उत्तीर्ण होनेवाले परिक्षार्थियों को संस्कृत भाषा प्रचार समितिकी ओरसे (स्वाध्यायमण्डल द्वारा प्रकाशित) पुस्तकोंके रूपमें पारितोषिक देना निश्चित हुआ है। यह पारितोषिक उन परिक्षार्थियों को प्राप्त होगा जो अपने केन्द्र में सर्व प्रथम रहे हैं। पुरस्कार की पुस्तकें यथासमय केन्द्रव्यवस्थापकों के पास भेज दी जाएँगी। प्रमाण पत्र वितरणोत्सव के समय केन्द्र व्यवस्थापक महानुभाव सामीतिकी ओरसे इनका वितरण करेंगे।

सितम्बर १९५१ इ. की संस्कृत परीक्षाके

पुरस्कृत परीक्षार्थियोंके नाम एवं केन्द्र

क्रमांक	केन्द्रनाम	प्रारम्भिणी	प्रवेशिका	परिचय	विशारद
१	भरुच	शंकरभाई भगवानदास पटेल	नटवरलाल नगीनलाल बाववाला		
२	चांदोद	कान्तिलाल रविशंकरभाई भट्ट	हसमुखलाल धीरजलाल वैद्यराज		
३	वडनगर	डाह्याभाई भीखाभाई सुथार	रामाभाई देवचंद पटेल	सितारास देवशंकर पण्डित	
४	धोलका	बकुला चन्दुभाई अमीन	भव्यकांत जेलुप्रसाद धोलकिया		
५	वासद	गोरधनभाई छगनभाई पटेल			
६	बडौदा	प्रभाकर दामोदर लळीत	कुंजबिहारी जगमोहनदास मोदी		
७	बोरीवली	प्रभाशंकर शंभुराम फडके	अनंतराय दुर्लभराम जानी	गोपाळराव वासुदेव पाठक	
८	खेरालु	जीवाभाई मसोतभाई चौधरी	जेठाभाई नाराभाई देसाई		
९	मंडाला	नवीनचन्द्र शिवशंकर पंड्या	नागजीभाई परसोत्तमदासपटेल		जयशंकर हरिलाल पंड्या
१०	सारसा	भारतसिंह कालाभाई परमार	भगुभाई शंकरभाई पटेल		
११	व्यारा	शशिकान्त छोटालाल शाह	बलवंतराय अंबेलाल पंड्या	रमेशचन्द्र नाथुभाई पटेल	
१२	सैजपुर	धुलाभाई मोतीभाई काछीया	बालमुकुंद दीनमणीशंकरपंडित		भानुप्रसाद सोमेश्वर व्यास
१३	नारगोल	परशुराम धनजी सुरती	छोटुभाई लालभाई भंडारी		
१४	बगवाडा	दयाळभाई नानाभाई पटेल	रतिलाल नारणजी देसाई		
१५	हाँसोट	लक्ष्मणभाई परसोत्तमभाई पटेल	कु. मधुरिका चंदुलाल गांधी, रणछोडभाई भगुभाई पटेल	कनैयालाल घेलाभाई शेठ	
१६	विसनगर	यशवन्तलाल नटवरलाल परिख	भगीरथ नानुभाई मजमुंदार	चतुरभाइ माधवलाल पटेल	
१७	काविठा	रावजीभाई प्रभुदास पटेल	खुशालभाई अंबालाल पटेल	मणीभाई काशीभाई पटेल	
१८	लांघनज	कान्तिलाल विठ्ठलदास पटेल		जोईताभाई खेमचन्ददास पटेल	
१९	चिखोदरा	हसमुखभाई देशाई भाई पटेल रवीन्द्र भाई ईश्वरभाई पटेल			
२०	महेमदाबाद		बिपिनचन्द्र पोपटलाल शाह		

२१	कंडाच	रणछोडभाई जेठाभाई वरिआ			
२२	बिलीमोरा	जमनादास छबीलाल टोपीवाला	जसवंतलाल मनरुपचन्द शाह		
२३	चकलाशी	कान्तिलाल शंकरभाई पटेल	रामचंद्र पितांबरदास आचार्य		
२४	कपडवणज	नरसिंह गोवरभाई पटेल	रावजीभाई रामभाई पटेल		
२५	गणदेवी	ठाकोरभाई हरगोविन्ददास पटेल			
२६	वालोड		हर्षदराय हरिभाई राणा		
२७	चिखली	विनोदराव बापुभाई वशी			
२८	सुरत	हसमुख भोगीलाल काजीवाला महेन्द्रकुमार मणीलाल रावल.	सुरेशचंद्र ठाकोरदास दलाल	रमेशचंद्र लल्लुभाई नायक	
२९	पारडी	किरीटकुमार शान्तिलाल कोठारी	किशोरकुमार रणछोडजी देसाई	ठाकोरभाई परशुरामभाई गांधी	
३०	नवसारी	नटवरलाल रणछोडजी दरजी	कु. कुमुद मनुभाई पटेल	नरहरीराव परबतराव शिंदे	
३१	भालेज	गोरधनभाई मोतीभाई पटेल			
३२	सामरखा		बाबूभाई मगनभाई पटेल	शान्तीलाल अम्बालाल उपाध्याय	
३३	भावनगर	लाभशंकर वासुदेव भोजक	भारतलाल प्रेमशंकर पाठक		
३४	आणंद	हरिकृष्ण माणेकलाल शाह		दिनेशचन्द्र शंकरलाल शाह	
३५	धीनोज	वसंतराव शंकरराव पोळ	छगनभाई पुंजीराम पटेल		
३६	बारडोली	छगनभाई गुलाबभाई पटेल	भगवानदास परागजी परमार		
३७	बलसाड	गुरुकान्त सूर्यराम जोशी			
३८	अमदाबाद	मनुभाई झवेरभाई पटेल	बलवंतसिंह गजसिंह चौहाण		
३९	सोनगढ	व्रिजलाल प्रभुदास पटेल			अनन्तराय यशवन्तराय भट्ट
४०	पडाली	गोरधनभाई धुलाभाई पारेख	जशभाई धुलाभाई पटेल		
४१	वल्लभ विद्यानगर	मगनभाई पुरुषोत्तमदास पटेल	भाईलालभाई नारणभाई पटेल		
४२	सीनोर	विनयकुमार मूलचन्द शाह	अजितकुमार दिनकरराय दवे		
४३	आनंद	कान्तिलाल शंकरलाल मिस्त्री	कान्तिलाल बेचरदास पंचाल		
४४	अंबाव	काशीभाई शनाभाई पटेल, उमेदभाई बकोरभाई पटेल			
४५	नडिआद	घनश्यामभाई अंबालाल भट्ट	रसिकलाल भगवानदास शाह		
४६	बडौदा	आशाभाई पुरुषोत्तमदास पटेल	कु. दमयन्ती यशवंत देवता		श्रीनिवास कृष्णराव पट्टणकर
४७	जोधपुर	मालती रोशनलाल देवी			
४८	गुना	कन्हैयालाल दौलतराम पलिया			
४९	बैरागढ	कलावती भोजिराज तोलाणी			
५०	बेगमपेठ	ब्र. मीरादेवी कमलेन्दुभूषण बोस			

५१	मंडलेश्वर	मांगीलाल गौरीशंकर तिवारी	राजाराम सुखलाल पंवार		माधव कृष्णराव तेलंग
५२	केविला	एदक्कल नरसिंह भट्ट ईश्वर भट्ट	के. ईश्वर के. नारायणभट्ट	देवकीदेवि कृष्णभट्ट बडेक्किल	के. शंकर नारायण भट्ट कोडन्दूकर
५३	उन्हेल	गौरीशंकर गोकुलप्रसाद शर्मा	मनोहर विष्णुपंत पाध्ये		
५४	रामायणमूपेठ	गोपालराव किशनराव			
५५	महिद्पुर	राधाकृष्ण रामचन्द्र आचार्य			अरविन्दकुमार भिकाजी गीते
५६	करडकल	दत्तात्रयराव शंकरराव		नरसिंहाचार्य नरहराचार्य कद्दि	
५७	रायपर्ति	गुडेल्लियादगिरि सरेमय्य			
५८	रायश्री	राधावल्लभ गोपीलाल शर्मा			
५९	ताहिरपुर भवीसा	मदनसिंह विसनसिंह			
६०	समर्थाश्रम	श्री. वेंकटेशम् ईरन्ना			
६१	कनखल	राजदुलारी देवी जयप्रकाश गुप्त			
६२	जयपुर	बलो कौरोमल पारवाणी	बूलचन्द रामचन्द गोलाणी		
६३	उरई	रामलखनलाल पन्नालाल	भोलाराम भूपति शर्मा		महेशचन्द बाबूकृष्ण स्वरूप सक्सेना
६४	ज्वालापुर				नरेन्द्रदेव केशवदेव शर्मा
६५	ददिया	सापकूजी कान्हूजी भांडारकर	पं. रामेश्वरप्रसाद मन्नुप्रसाद रावत		
६६	नूतनकल	राजाराम सुबय्या			
६७	खामगांव	भुजंगराव सदाशिवराव भाले, कु. इन्दुमती दत्तात्रय मुसारी	कु. पुष्पा सदाशिव करमळकर	कु. शान्ता कुशल अय्या कट्टुकर	मुरलीधर गणपतराव पाटील
६८	जालना	चन्द्रकान्त दत्तात्रयराव देशपाण्डे			
६९	अंबाजोगाई		कु. मालती केशवराव सोमण		
७०	इन्दौर	सुमन विश्वनाथ आपटे	राधाकृष्ण बालकृष्ण पुराणिक		
७१	हैद्राबाद	कु. सुमन श्रीनिवासराव केवडकर			
७२	जलगांव	प्रभा यशवंत कुळकर्णी	माणिकलाल शांतिलाल उनडकाट		
७३	हिंगणघाट	विठ्ठल नारायणराव वनिकर	वसंत दामोदर देशपांडे	लक्ष्मीकान्त बालाजी सैनीस	
७४	मानवत	बलीराम बजरंग कुमावत			
७५	तलमोड	हणमंतराव नरसिंगराव भोसले, विठ्ठल गोपालराव मोरे			
७६	पैठण	यशवन्तराव प्रभाकरराव जोशी			
७७	पाटोदा		देविदास रघुनाथराव जोशी		
७८	आष्टी	दत्तात्रय गोविंदराव गोले			
७९	नंदुरबार	गजानन रामचन्द्र अंबेडकर		मनोहर पुण्डलीक कुलकर्णी	
८०	कलम	मोहन गणपतराव भूसारे			

८१	तेल्हारा	मधुकर दामोदर धर्माधिकारी		
८२	सिंदी	कृष्ण हरी साठे		
८३	कारंजा			लक्ष्मण नारायणराव बोरकर
८४	भुसावळ	भास्कर गंगाराम भंगाळे, बापू गिरधर पाटील		
८५	अमरावती	ऋषभचन्द छगनलाल जैन	कु. मन्दाकिनी भगीरथ गंधे	
८६	देऊळगांवराजा	सुधाकर रंगनाथराव कुळकर्णी		
८७	जामखेड	प्रभाकर पंढरीनाथ शुक्ल		
८८	बीड	दत्तात्रय एकनाथराव पाण्डे, भगवानदास मोतीलाल वर्मा		
८९	बामणोद	सदाशिव कालुराम इंगळे	विष्णु हेमचंद चौधरी	एकनाथ लोटू तविल
९०	नांदेड	शामसुंदर शंकरराव जहागीरदार		
९१	बेळगांव	मोहन बैंडोपन्त माळीहल्ली		
९२	केज	अम्बादास व्यंकटेश कुलकर्णी		
९३	फैजपूर	तापिराम कृष्णा फेगडे		
९४	चांदूर रेल्वे	बाबा कृष्णराव भेसे		
९५	वस्मतनगर	दशरथ राधाकृष्णराव शेलके, दामोदर मानिकराव वल्हाळ		
९६	मेहकर	सिद्धेश्वर त्र्यंबकराव पेंडसे	हनुमंत त्र्यंबकराव देशपांडे	
९७	शेगांव	सुधाकर वामन जोशी		
९८	धामणगांव	अंबादास पंजाबराव काकडे		
९९	नेवासे	अच्युत वासुदेव मंत्री	सुमन रावसाहेब नवले	
१००	वर्धा	कु. नलिनी माणिकराव शहाकार	भास्कर सच्चितानन्द बाकरे	
१०१	सानेर	अरुण पद्मनाभ भवाळकर	पुरुषोत्तम जाजबाजी कोल्हे	
१०२	नान्दूरा	राजाराम त्र्यंबक जोशी		
१०३	मलकापूर	रामेश्वर रूपचन्द सुगंधी	कु. मीरा नागोराव जहागीरदार	
१०४	आकोला	मधू लक्ष्मणराव डाखोले	कु. कुसुम मोरेश्वर सावरकर	कु. पद्मा जयकृष्णपन्त जोशी
१०५	पटियाला	अमर साधना विद्यारत्न		
१०६	जोधपूर	भवानीलाल फकीरचन्द माथुर		
१०७	बिजिबिहारा	प्रेमनाथ नन्दराम डासी		
१०८	बिजापर	चिन्नप्पा यमनप्पा मामनि		
१०९	कुंभकोणम्	कल्याणसुन्दरम् रामनाथ		
११०	पालीताणा	लाभशंकर रतिलाल उपाध्याय		
१११	मियासरभण	चुनीलाल छीताभाई पटेल	त्रिकमलाल सोमाभाई पटेल	ईश्वरभाई लालभाई पटेल
११२	नीमच			नन्दलाल मल्हूरामजी बांसल,
११३	नागपूर	रामकृष्ण गोविंदराव भागवतकर	दिगंबर महादेवराव जुमडे	वासुदेव रामचन्द्र पटवर्धन

ऋ० ३ । १७ । ३ (कतो वैश्वामित्रः । अग्निः । त्रिष्टुप्)

२४१ त्रीण्यायूंषि तव जातवेदास्तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने ।
ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वानथा भव यजमानाय शं योः ॥ ३ ॥

ऋ० ३ । २० । १ (गाथी कौशिकः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप्)

२४२ अग्निमुषसमश्विना दधिक्रां व्युष्टिषु हवते वह्निरुक्थैः ।
सुज्योतिषो नः शृण्वन्तु देवाः सजोषसो अध्वरं वावशानाः ॥ १ ॥

ऋ० ३ । २० । ५

२४३ दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं बृहस्पतिं सवितारं च देवम् ।
अश्विना मित्रावरुणा भगं च वसून् रुद्राँ आदित्याँ इह हुवे ॥ ५ ॥

ऋ० ३ । ३० । १३ (गाथिनो विश्वामित्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्)

२४४ दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तोर्विवस्वत्या महि चित्रमनीकम् ।
विश्वे जानन्ति महिना यदागादिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ॥ १३ ॥

ऋ० ३ । ३१ । ४ (कुशिक ऐषीरथिः, गाथिनो विश्वामित्रो वा । इन्द्रः । त्रिष्टुप्)

२४५ अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन् ।
तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ॥ ४ ॥

उषाकी उत्पत्ति होते ही अग्नि प्रदीप्त करते हैं । इसलिये अग्निसे कहा है कि तू उषःकालमें हमारा संरक्षक होकर रह ।

तीन उषाएँ

२४१ हे (जातवेदः) वेद जिससे हुए ऐसे अग्ने ! (तव त्रीणि आयूंषि) तेरे तीन आयुष्य अर्थात् जीवन हैं । हे अग्ने ! (ते आजानीः तिस्रः उषसः) तेरी माताएं तीन उषाएं हैं । हे विद्वान् ! (ताभिः देवानां अवः यक्षि) उनसे देवोंको हवि पहुंचाओ । तथा (अथ यजमानस्य शं योः भव) यजमानको कल्याण और सुख देनेवाला हो । (३)

यहां उषाएं तीन हैं ऐसा कहा है । प्रारंभ, मध्य और सूर्योदयकी ऐसे उषाके ३ भेद होते हैं ।

२४२ (व्युष्टिषु उक्थैः वह्निः) उषःकालमें स्तोत्रोंसे हवन करनेवाला अग्नि, उषा, अश्विनौ और दधिक्राकी स्तुति गाता है । (अध्वरं वावशानाः) हिंसारहित यज्ञकी इच्छा करनेवाले (सजोषसः) एक मतसे रहनेवाले (सुज्योतिषः देवाः) तेजस्वी देव (नः शृण्वन्तु) हमारी बात सुनें । (१)

इसमें कहा है कि उषाके स्तोत्र प्रातःकालमें गाये जाते हैं ।

२४३ दधिक्रा अग्नि उषा देवी, बृहस्पति, सविता देव, अश्विनौ, मित्रावरुण, भग, वसू, रुद्र और आदित्य इन देवताओंके उद्देश्यसे मैं यहां प्रार्थना करता हूं । (५)

यहां प्रार्थनाके देवोंमें उषाका नाम है ।

२४४ (विश्वे) सब लोग (विवस्वत्या अक्तोः उषसः यामन्) जानेवाली रात्रीके अन्तमें उषाके समयमें (महि चित्रं अनीकं दिदृक्षन्तः) बडा विलक्षण सूर्यका तेज देखते हैं । (महिना जानन्ति) वे महत्त्वपूर्ण कर्मोंको जानते है कि (यत् आगात्) अब उषःकाल आगया है । (इन्द्रस्य कर्म पुरूणि सुकृता) अब ये इन्द्रके ही उत्तम कर्म हैं । (१३)

उषाको उत्पन्न करना इन्द्रका महत् कर्म है ।

२४५ (जैत्रीः स्पृधानं अभि असचन्त) विजय प्राप्त करनेवाले वीर स्पर्धा करनेवाले स्वामीके पास आते हैं । (तमसः महि ज्योतिः निरजानन्) अन्धकारसे बडा तेज बाहर आया है । (तं जानतीः उषासः प्रत्युदायन्) उसको जाननेवाली उषायें उसके संमुख गयीं । तब (इन्द्रः गवां एकः पतिः अभवत्) इन्द्र गौओंका अथवा किरणोंका एक ही स्वामी हुआ । (४)

उषाएं सूर्यके संमुख जाती हैं और उसका स्वागत करती है ।

ऋ० ३। ३१। १५ (कुशिक ऐषीरथिः, गाथिनो विश्वामित्रो वा। इन्द्रः। त्रिष्टुप्)

२४६ महि क्षेत्रं पुरुश्चन्द्रं विविद्वानादित् सखिभ्यश्चरथं समैरत्।
इन्द्रो नृभिरजनद् दीद्यानः साकं सूर्यमुषसं गातुमग्निम् ॥ १५ ॥

ऋ० ३। ३२। ८ (गाथिनो विश्वामित्रः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्)

२४७ इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे।
दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्यमुषसं सुदंसाः ॥ ८ ॥

ऋ० ३। ४४। २

२४८ हर्यन्नुषसमर्चयः सूर्यं हर्यन्नरोचयः।
विद्वांश्चिकित्वान् हर्यश्व वर्धस इन्द्र विश्वा अभि श्रियः ॥ २ ॥

ऋ० ३। ५५। १ (प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा। विश्वे देवाः। त्रिष्टुप्)

२४९ उषसः पूर्वा अध यद् व्यूषुर्महद् वि जज्ञे अक्षरं पदे गोः।
व्रता देवानामुप नु प्रभूषन् महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १ ॥

ऋ० ३। ५८। १ (गाथिनो विश्वामित्रः। अश्विनौ। त्रिष्टुप्)

२५० धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहानाऽन्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः।
आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोषसः स्तोमो अश्विनावजीगः ॥ १ ॥

---

२४६ इन्द्रने (पुरुश्चन्द्रं महि क्षेत्रं विविद्वान्) बहुत सुवर्णवाला एक बडा क्षेत्र है ऐसा जान लिया और (आदित्) तत्काल ही (सखिभ्यः चरथं समैरत्) अपने मित्रोंको वहां जानेके लिये प्रेरणा की। इन्द्रने (नृभिः साकं दीद्यानः) अपने वीरोंके साथ सूर्य, उषा, पृथ्वीका मार्ग और अग्निको (अजनत्) निर्माण किया। वहां जानेके लिये मार्ग किया। (१५)

२४७ (विश्वे देवाः) सब देव (इन्द्रस्य पुरूणि सुकृता कर्म) इन्द्रके बहुत उत्तम किये कर्म तथा (व्रतानि) व्रतोंको (न मिनन्ति) विनष्ट नहीं कर सकते, (यः पृथिवीं उत इमां द्यां दाधार) जिसने पृथिवीका और इस द्युलोकका धारण किया है और (सुदंसाः) उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रने (सूर्यं उषसं जजान) सूर्य और उषाको निर्माण किया। (८)

इन्द्रने उषाको निर्माण किया है।

उषाका सत्कार करनेवाला इन्द्र

२४८ हे (हर्यश्व इन्द्र) हरिद्रंगके घोडोंवाले इन्द्र! (हर्यन्) प्रेम करनेवाले तूने (उषसं अर्चयः) उषाकी पूजा की और हे (हर्यन्) प्रेम करनेवाले इन्द्र! (सूर्यं अरोचयः) तूने सूर्यका तेज बढाया। (विद्वान् चिकित्वान्) ज्ञानी और विचारी ऐसा तू (विश्वाः श्रियः अभिवर्धसे) सब संपत्तियोंको बढाता है। (२)

इन्द्र उषाका सत्कार करता है।

अनेक उषाएं

२४९ (यत् पूर्वाः उषसः व्यूषुः) जब पहिली उषाएं प्रकाशित हो चुकी तब (गोः पदे महत् अक्षरं वि जज्ञे) भूमिके स्थानसे एक बडा अविनाशी तेज प्रकट हुआ। (देवानां व्रता उप प्रभूषन्) उसने देवोंके व्रतोंको उत्तम रीतिसे प्रभावित किया, (देवानां एकं महत् असुरत्वं) वह देवोंमें एक ही बडा शक्तिशाली तत्त्व है (१)

उषाके पश्चात् सूर्यरूपी तेज प्रकट होनेका यह वर्णन है। इस वर्णनमें सूर्यके उदयके पूर्व अनेक उषाओंका आना वर्णन किया है। यह उत्तरीय ध्रुवके स्थानमें ही होता है।

२५० (प्रत्नस्य धेनुः काम्यं दुहाना) पुराण पुरुषकी गौ इच्छित वस्तु देती है। (दक्षिणायाः पुत्रः अन्तः चरति) दक्षिण दिशाका पुत्र सूर्य द्यावापृथिवीमें घूमता है। (शुभ्रयामा द्योतनिं आवहति) शुभ्र रथवाली उषा प्रकाशको लाती है। (उषसः स्तोमः अश्विनौ अजीगः) उषाके स्तोत्रोंने

ऋ० ४।१।५ (वामदेवो गौतमः। अग्नीवरुणौ। त्रिष्टुप्)

२५१ स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ।
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि ॥ ५ ॥ वा. य. ३।१४

ऋ० ४।१।१३

२५२ अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभि प्र सेदुर्ऋतमाशुषाणाः।
अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तरुदुस्रा आजन्नुषसो हुवानाः ॥ १३ ॥

ऋ० ४।१।१७

२५३ नेशत् तमो दुधितं रोचत द्यौरुद् देव्या उषसो भानुरर्त।
आ सूर्यो बृहतस्तिष्ठदज्राँ ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥ १७ ॥

ऋ० ४।२।८

२५४ यस्त्वा दोषा य उषसि प्रशंसात् प्रियं वा त्वा कृणवते हविष्मान्।
अश्वो न स्वे दम आ हेम्यावान् तमंहसः पीपरो दाश्वांसम् ॥ ८ ॥

अश्विदेवोंको जगाया है। (९)

पुराण पुरुष द्युलोक है, उसकी धेनु उषा है। वह इष्ट सुख देती है। दक्षिण दिशाका पुत्र सूर्य है क्योंकि अनेक उषाओंके आनेपर उत्तरी ध्रुवमें प्रथम सूर्य दर्शन वहां दक्षिण दिशामें ही होता है। उषा इस तेजका प्रथम धारण करती है।

२५१ हे अग्ने! (सः त्वं नः अवमः ऊती भव) वह तू हमारे पास रहकर संरक्षण करनेवाला हो। (अस्याः उषसः व्युष्टौ नेदिष्ठः) इस उषाके प्रकाशित होनेपर हमारे पास रह। (रराणः वरुणं नः अव यक्ष्व) आनंदित होकर वरुणका हमारे लिये यजन द्वारा संतोष कर। (मृळीकं वीहि) यह सुखदायी हव्यका सेवन कर। (नः सुहवः एधि) हमारी प्रार्थना सुननेवाला होकर पास आ जावो। (५)

उषःकालमें अग्नि संरक्षक होकर रहे।

२५२ (ऋतं आशुषाणाः) सत्यका पालन करनेवाले (अस्माकं मनुष्याः पितरः) हमारे मनुष्य देहधारी पितर (अत्र अभिप्रसेदुः) यहां बैठे थे। (उषसः हुवानाः) उषाओंकी प्रार्थना करनेवाले वे (अश्म-व्रजाः) पत्थरोंकी गोशालामें (सुदुघाः उस्राः) उत्तम दूध देनेवाली गौओंको (अन्तः वव्रे) अन्दर ही प्राप्त किया और (आजन्) उनको घरपर लाया। (१३)

उषाओंके स्तोत्र गानेवाले स्तोता गण यहां कहे हैं।

२५३ (दुधितं तमः नेशत्) घोर अन्धकार दूर हुआ। (द्यौः रोचत) द्युलोक प्रकाशित हुआ। (देव्या उषसः भानुः उत् अर्त) दिव्य उषाका प्रकाश ऊपर आया है। (सूर्यः बृहतः अज्रां आ तिष्ठत्) सूर्य विशाल पर्वतोंपर प्रकाश रूपसे आ रहा है। वह (मर्तेषु ऋजु वृजिना च पश्यन्) मानवोंमें सरल और कुटिल कौन है इसको देखता है। (१७)

दिव्य उषाका प्रकाश हुआ यह वर्णन यहां है।

२५४ (यः त्वा दोषा) जो तेरी रात्रीके समय (यः उषसि) जो उषःकालमें (प्रशंसात्) प्रशंसा करता है तथा जो (हविष्मान् वा त्वा प्रियं कृणवते) अन्नका अर्पण करनेवाला तुझे प्रिय लगनेवाला कार्य करता है, (तं दाश्वांसं अंहसः आ पीपरः) उस दाताको पापसे तू पार ले जाता है (हेम्यावान् अश्वः स्वे दमे) सुवर्ण भूषणवाला घोडा जैसा अपने स्थानमें बैठनेवालेको पार कर देता है। (८)

उषःकालमें अग्निकी प्रशंसा की जाती है।

ऋ० ४ । १ । १५

२५५ अधा मातुरुषसः सप्त विप्रा जायेमहि प्रथमा वेधसो नॄन् ।
दिवस्पुत्रा अंगिरसो भवेमाऽद्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः ॥ १५ ॥

ऋ० ४ । २ । १९

२५६ अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चन्द्रं देवस्य मर्मृजतश्चारु चक्षुः ॥ १९ ॥

ऋ० ४ । ३ । ११

२५७ ऋतेनाद्रिं व्यसन् भिदन्तः समंगिरसो नवन्त गोभिः ।
शुनं नरः परि षदन्नुषासमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ॥ ११ ॥

ऋ० ४ । ५ । १३

२५८ का मर्यादा वयुना कद्ध वाममच्छा गमेम रघवो न वाजम् ।
कदा नो देवीरमृतस्य पत्नीः सूरो वर्णेन ततनन्नुषासः ॥ १३ ॥

ऋ० ४ । १२ । २

२५९ इध्मं यस्ते जभरच्छश्रमाणो महो अग्ने अनीकमा सपर्यन् ।
स इधानः प्रति दोषामुषासं पुष्यन् रयिं सचते घ्नन्नमित्रान् ॥ २ ॥

उषाके सात पुत्र

२५५ (अध मातुः उषसः सप्त विप्राः जायेमहि) अब उषा मातासे हम सात ज्ञानी पुत्र उत्पन्न होते हैं। (प्रथमाः वेधसः नॄन्) प्रथम हुए हम ज्ञानी लोगोंकी सेवाके लिये लगते हैं। (अंगिरसः दिवः पुत्राः भवेम) हम अंगिरस सूर्यके पुत्र हुए हैं और (शुचन्तः धनिनं अद्रिं रुजेम) हम तेजस्वी बनकर धनयुक्त पर्वतको फोडकर धन प्राप्त करेंगे। (१५)

उषा माता है और उसके सात ज्ञानी पुत्र हैं जो लोगोंकी सेवा करनेके लिये उत्पन्न होते हैं।

२५६ (ते अकर्म) तेरा कार्य हमने किया है। (स्वपसः अभूम) इससे हम उत्तम कर्म करनेवाले होगये हैं। (विभातीः उषसः ऋतं अवस्रन्) तेजस्वी उषाओंने यज्ञकर्म चलाया है। (देवस्य मर्मृजतः चारुः चक्षुः) शोधक देवके सुंदर नेत्ररूपी (सुश्चन्द्रं अग्निं) तेजस्वी अग्निको (पुरुधा अनूनं) बहुत प्रकारसे बढाया है। (१९)

उषा आते ही यज्ञ शुरू होते हैं।

२५७ (अंगिरसः ऋतेन अद्रिं भिदन्तः व्यसन्) अंगिरस सत्ययज्ञसे पर्वतको तोड रहे थे। तब उन्होंने (गोभिः संनवन्त) गौओंको प्राप्त किया। (नरः शुनं उषासं परिषदन्) उन मनुष्योंने सुखदायी उषःकालमें सभा करके (अग्नौ जाते) अग्नि प्रज्वलित होनेपर (स्वः आविः अभवत्) सूर्यको प्रकट किया। (११)

मनुष्य उषःकालमें यज्ञमंडपमें जमा होते हैं और अग्निको प्रदीप्त करते हैं।

२५८ (का मर्यादा) कौनसी मर्यादा है ? (कत् ह वयुना) कौनसे कर्म करने हैं ? (रघवः वाजं न) शीघ्रगामी घोडे युद्धमें जाते हैं वैसे हम (वामं अच्छा गमेम) धन प्राप्त करनेके लिये शीघ्र जांय। (अमृतस्य पत्नीः देवीः उषासः) अमरदेवकी पत्नीयां देवी उषाएं (कदा नः सूरः वर्णेन ततनन्) कब हमें सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित करेंगे ? हमारे यशको कब फैलायेंगी ? (१३)

उषायें सूर्यके प्रकाशको फैलाती हैं।

२५९ (यः शश्रमाणः ते इध्मं जभरत्) जो कोई श्रम करके तेरे लिये समिधा देता है ? हे (महः अग्ने) बडे अग्ने ! (अनीकं आ सपर्यन्) तेरे प्रकाशका सत्कार जो कोई करता है ? (सः इधानः प्रति दोषां उषासं पुष्यन्) वह तुझे प्रदीप्त करनेवाला रात्री और उषःकालमें पुष्ट होता जाता है और

ऋ० ४ । १३ । १; अथर्व १८ । १ । २८

२६० प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यद् विभातीनां सुमना रत्नधेयम् ।
यातमश्विना सुकृतो दुरोणमुत् सूर्यो ज्योतिषा देव एति ॥ १ ॥

ऋ० ४ । १४ । ३

२६१ आवहन्त्यरुणीर्ज्योतिषागान्मही चित्रा रश्मिभिश्चेकिताना ।
प्रबोधयन्ती सुविताय देव्युषा ईयते सुयुजा रथेन ॥ ३ ॥

ऋ० ४ । १४ । ४

२६२ आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ ।
इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन् यज्ञे वृषणा मादयेथाम् ॥ ४ ॥

ऋ० ४ । १९ । ८ (इन्द्रः ।)

२६३ पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद् वि सिन्धून् ।
परिष्ठिता अतृणद् बद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥ ८ ॥

(अमित्रान् घ्नन्) शत्रुओंको मारता है और (रयिं सचते) धन प्राप्त करता है। (२)

उषःकालमें उठकर अग्निको प्रदीप्त करनेवाला धन प्राप्त करता है।

२६० (सुमनाः अग्निः) उत्तम मनवाला अग्नि (विभातीनां उषसां अग्रं) तेजस्वी उषाओंके पूर्व ही (रत्नधेयं प्रत्यख्यत्) रत्न देनेका अपना रूप प्रकट करता है। हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (सुकृतः दुरोणं यातं) सत्कर्म करनेवालेके घरको जाओ, क्योंकि (सूर्यः देवः ज्योतिषा उत् एति) सूर्यदेव अपने प्रकाशके साथ उदयको प्राप्त हो रहा है। (१)

उषाके पूर्व अग्नि प्रदीप्त होता है।

२६१ (अरुणी मही चित्रा) लाल रंगवाली बडी विलक्षण (रश्मिभिः चेकिताना) किरणोंसे स्पष्ट दीखनेवाली (ज्योतिषा आवहन्ती आगात्) तेजके साथ उषा आरही है। यह (उषा देवी सुविताय बोधयन्ती) उषादेवी सुख प्राप्तिके लिये सबको जगाती है और (सुयुजा रथेन ईयते) उत्तम जोडे हुए रथसे चल रही है। (३)

यह सब उषाका ही वर्णन है।

२६२ (ते वहिष्ठाः अश्वासः रथाः) वे बलवान तथा वेगवान घोडे और रथ (उषसः व्युष्टौ) उषाके प्रकाशित होनेपर (वां इह आवहन्तु) आप दोनोंको यहां ले आवें। (इमे सोमाः हि वां मधुपेयाय) ये सोमरस आपके मधुरपानके लिये ही तैयार किये हैं। हे (वृषणा) बलवान् अश्विदेवो ! (अस्मिन् यज्ञे मादयेथां) इस यज्ञमें प्रसन्न हो जाओ। (४)

उषाके प्रकाशित होनेपर अश्विदेव आते है।

२६३ (पूर्वीः उषसः शरदः च गूर्ताः) पूर्वकी बहुत उषाएँ और रमणीय शरदृतुओंमें (वृत्रं जघन्वान्) वृत्रको इन्द्रने मारा और (सिन्धून् वि असृजत्) नदियोंको बहने दिया। तथा वृत्रने (बद्बधानाः परिष्ठिताः सीराः) प्रतिबंधित की अतः स्थिर हुई नदियां इन्द्रने (पृथिव्याः स्रवितवे) पृथिवीके ऊपर प्रवाहित होनेके योग्य बना दीं। (८)

वृत्रको मारनेके पूर्व कई उषःकाल गये यह वृत्त यहां है।

ऋ० ४ । २३ । ५

२६४ कथा कदस्या उषसो व्युष्टौ देवो मर्तस्य सख्यं जुजोष ।
कथा कदस्य सख्यं सखिभ्यो ये अस्मिन् कामं सुयुजं ततस्रे ॥ ५ ॥

ऋ० ४ । २३ । ७

२६५ द्रुहं जिघांसन् ध्वरसमनिन्द्रां तेतिक्ते तिग्मा तुजसे अनीका ।
ऋणा चिद् यत्र ऋणया न उग्रो दूरे अज्ञाता उषसो बबाधे ॥ ७ ॥

ऋ० ४ । ३० । ८

२६६ एतद्घेदुत वीर्यं इन्द्र चकर्थ पौंस्यम् । स्त्रियं यद्दुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिवः ॥ ८ ॥

ऋ० ४ । ३० । ९ (इन्द्रोषसौ । गायत्री)

२६७ दिवश्चिद् घा दुहितरं महान् महीयमानाम् । उषासमिन्द्र सं पिणक् ॥ ९ ॥

ऋ० ४ । ३० । १०-११

२६८ अपोषा अनसः सरत् संपिष्टादह बिभ्युषी । नि यत् सीं शिश्नथद् वृषा ॥ १० ॥

२६९ एतदस्या अनः शये सुसंपिष्टं विपाश्या । ससार सीं परावतः ॥ ११ ॥

---

२६४ (अस्याः उषसः व्युष्टौ) इस उषाका प्रकाश होनेपर इन्द्रने (मर्तस्य सख्यं) मनुष्यके साथ मित्रत्व (कथा कद् जुजोष) कब और कैसा स्वीकार किया ? (कथा कद् अस्य सखिभ्यः सख्यं) कब और कैसी इसकी मित्रोंके साथ मित्रता होती है (ये अस्मिन् सुयुजं कामं ततस्रे) जो इसमें योग्य भक्ति रखते हैं ? (५)

इन्द्रका द्वेष करनेवाली स्त्रीका वध

२६५ इन्द्र (द्रुहं ध्वरसं अनिन्द्रां जिघांसन्) द्रोही घातक इन्द्रका द्वेष करनेवाली शत्रुस्त्रीका नाश करनेकी इच्छासे (तुजसे तिग्मा अनीका तेतिक्ते) उसका वध करनेके लिये तीक्ष्ण शस्त्रोंको भी अधिक तीक्ष्ण करता है । (यत्र ऋणा नः चित्) जहां हमारे ऋण हमें बाधा करते हैं, वहां (उग्रः ऋणयाः) उग्र ऋणको दूर करनेवाला इन्द्र (अज्ञाताः उषसः दूरे बबाधे) अज्ञात उषाओंको दूर ही रखता है । हमारे ऊपर वे दिन नहीं आते कि जिसमें ऋणके कष्ट हमें दुःख दे सकें । (७)

उषाका रथतोड दिया

२६६ ' दुष्ट विचार करनेवाली स्वर्गकन्या स्त्रीका इन्द्रने वध किया । यह इन्द्रने बडा पराक्रमका कार्य किया । ' (८)

मं. १० । १३८ । ५ देखो इसमें भी उषाका रथ तोडनेका वर्णन है ।

२६७ हे इन्द्र ! (दिवः दुहितरं चित् घ) स्वर्गकन्या उषाको भी वह (महीयमानां उषासं) बडी घमण्ड करने लगी इसलिये उस उषाको (महान्) तू महान् है इसलिये (सं पिणक्) चूर्णित किया, नष्ट किया । (९)

इन्द्रने बहुत घमण्ड करनेके कारण उषाका नाश किया । इसलिये बडेकी पुत्री होनेपर भी इन्द्र किसीके अपराधकी क्षमा नहीं करता यह इसका तात्पर्य है ।

२६८ (वृषा यत् सीं नि शिश्नथत्) बलवान् इन्द्रने जब इसके रथको तोडा, तब (उषाः अनसः संपिष्टात्) उषा उस टूटे रथसे (अह बिभ्युषी) घबरायी और (अप सरत्) दूर होगई । (१०)

२६९ (अस्याः एतत् सुसंपिष्टं अनः) इसका वह चूर्णित हुआ रथ (विपाश्याः शये) विपाशा नदीके तीरपर पडा है और (सीं परावतः ससार) वह उषा वहांसे दूर चली गयी । (११)

ऋ० ४ । ३९ । १ (दधिक्राः । त्रिष्टुप्)

२७० आशुं दधिक्रां तमु नु ष्टवाम दिवस्पृथिव्या उत चार्किराम ।
उच्छन्तीर्मामुषसः सूदयन्त्वति विश्वानि दुरितानि पर्षन् ॥ १ ॥

ऋ० ४ । ३९ । ३

२७१ यो अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत् समिद्धे अग्ना उषसो व्युष्टौ ।
अनागसं तमदितिः कृणोतु स मित्रेण वरुणेना सजोषाः ॥ ३ ॥

ऋ० ४ । ४० । १

२७२ दधिक्राव्ण इदु नु चर्किराम विश्वा इन्मामुषसः सूदयन्तु ।
अपामग्नेरुषसः सूर्यस्य बृहस्पतेराङ्गिरसस्य जिष्णोः ॥ १ ॥

ऋ० ४ । ४० । २

२७३ सत्वा भरिषो गविषो दुवन्यसच्छ्रवस्यादिष उषसस्तुरण्यसत् ।
सत्यो द्रवो द्रवरः पतंगरो दधिक्रावेषमूर्जं स्वर्जनत् ॥ २ ॥

ऋ० ४ । ४५ । २ (अश्विनौ । जगती)

२७४ उद् वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु ।
अपोर्णुवन्तस्तम आ परीवृतं स्व१र्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ॥ २ ॥

---

२७० (तं आशुं दधिक्रां उ नु स्तवाम) शीघ्र चलनेवाले उस घोडेकी हम स्तुति करते हैं (उत दिवः पृथिव्याः चार्किराम) और द्यु और पृथिवीका भी हम उसमें नाम लेंगे। (उच्छन्तीः उषसः मां सूदयन्तु) प्रकाशनेवाली उषायें मुझे उत्साहित करें और (विश्वानि दुरितानि अति पर्षत्) सब पापोंसे हमें बचावे। (१)

२७१ (यः समिद्धे अग्नौ) जो अग्नि प्रदीप्त होनेपर (उषसः व्युष्टौ) उषाके प्रकाशनेपर (अश्वस्य दधिक्राव्णः अकारीत्) दधिका अश्वकी स्तुति करता है, (तं अदितिः अनागसं कृणोतु) उसे अदिति निष्पाप करे तथा (वरुणेन मित्रेण सजोषाः) वरुण और मित्र मिलकर उसको निष्पाप बनावें। (३)

२७२ (दधिक्राव्ण इत् उ नु चर्किराम) दधिका अश्वकी हम प्रशंसा गाते हैं, (विश्वाः उषसः मां इत् सूदयन्तु) सब उषाएं मुझे उत्साहित करें। हम आप्, अग्नि, उषा, सूर्य व जयशाली आंगिरस बृहस्पतिकी स्तुति गाते हैं। (१)

२७३ (सत्वा) बलवान् (भरिषः) पोषण करनेवाला, (गविषः) गौओंकी इच्छा करनेवाला, (दुवन्यसत्) उपासकोंमें रहनेवाला, (श्रवस्यात्) यशकी इच्छा करनेवाला, (तुरण्यसत्) त्वरा करनेवाला (उषसः इषः) उषःकालमें अन्न चाहनेवाला, (सत्यः) सत्यनिष्ठ, (द्रवः द्रवरः) वेगवान् और अधिक वेगवाला (पतंगरः) कूदते हुए जानेवाला (दधिक्रावा) दधिकावा घोडा हमारे लिये (इषं ऊर्जं स्वः जनत्) अन्न, बल और सुख देवे। (२)

यह उत्तम घोडेका वर्णन है।

२७४ (वां मधुमन्तः पृक्षासः उत् ईरते) तुम्हारे मीठासभरे अन्न ऊपर आरहे हैं (उषसः व्युष्टिषु अश्वासः रथाः) उषाके प्रकाशित होनेपर घोडे और रथ बाहर आरहे हैं। (परीवृतं तमः अप आ ऊर्णुवन्तः) घेरे अन्धकारको दूर करके (स्वः न रजः शुक्रं आ तन्वन्त) सूर्यके समान अन्तरिक्षमें प्रकाश फैलाते हैं। (२)

ऋ० ४ । ५५ । ९ (विश्वेदेवाः गायत्री)

२७५ उषो मघोन्या वह सूनृते वार्या पुरु । अस्मभ्यं वाजिनीवति ॥ ९ ॥

ऋ० ५ । १ । १ (बुधगविष्ठिरावात्रेयौ । अग्निः । त्रिष्टुप्)

२७६ अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥ १ ॥

वा. य. १५ । २४; अथर्व० १३ । २ । ४६

ऋ० ५ । १ । ४

२७७ अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्ये सं चरन्ति ।
यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम् ॥ ४ ॥

ऋ० ५ । २८ । १ (विश्ववारात्रेयी । अग्निः । त्रिष्टुप्)

२७८ समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत् प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया वि भाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईळाना हविषा घृताची ॥ १ ॥

ऋ० ५ । ३७ । १ (भौमोऽत्रिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्)

२७९ सं भानुना यतते सूर्यस्याऽऽजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः ।
तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान् य इन्द्राय सुनवामेत्याह ॥ १ ॥

---

२७५ हे (वाजिनीवति सूनृते मघोनि उषः) अन्नवाली, उत्तम भाषण करनेवाली धनवाली उषा ! (अस्मभ्यं वार्या पुरु आ वह) हमारे लिये स्वीकारने योग्य बहुत धन ले आओ । (९)

उषाका सत्कार

२७६ (धेनुं इव) दूध देनेवाली गौके सामने जैसे जाते हैं उस तरह (आयतीं उषासं प्रति) आनेवाली उषाके सामने जानेके लिये (जनानां समिधा) लोगोंकी समिधाओंसे (अग्निः अबोधि) अग्नि जाग उठा है (यह्वाः इव वयां प्र उज्जिहानाः) बडे वृक्ष जैसे शाखाओंको ऊपर प्रेरित करते हैं उस तरह इस अग्निकी (भानवः नाकं अच्छ प्र सिस्रते) ज्वालाएँ स्वर्गकी ओर अच्छी तरह जा रही हैं । (१)

यहां उषाके सन्मुख अग्नि जाता है और सन्मानपूर्वक उषाको लाता है ऐसा कहा है । स्त्रीका भी इतना संमान होना चाहिये, यह बोध यहां मिलता है ।

२७७ (देवयतः मनांसि) देवत्वको प्राप्त करनेवालोंके मन (अच्छ अग्निं) अग्निके पास जाते हैं (सूर्ये चक्षूंषि संचरन्ति इव) सूर्यमें जैसे आंख लगते हैं । (यत् ईं विरूपे उषसा सुवाते) जब इसको विरुद्ध रूपवाली रात्री और उषाएं उत्पन्न करती हैं तब (अह्नां अग्रे श्वेतः वाजी जायते) दिनोंके प्रारंभमें श्वेत घोडा अर्थात् अग्नि उत्पन्न होता है । (४)

उषःकालमें अग्नि प्रदीप्त करते हैं, वह सूर्योदयकालमें बढता है । रात्री और उषा ये दोनों विरुद्ध रंगरूपवाली स्त्रियां अग्निको उत्पन्न करती है ।

२७८ (समिद्धः अग्निः) प्रज्वलित हुआ अग्नि (शोचिः दिवि अश्रेत्) अपने तेजको आकाशमें भेजता है । (उषसं प्रत्यङ् उर्विया विभाति) वह उषाकी ओर बडे तेजके साथ प्रकाशता है । (घृताची हविषा देवान् ईळाना) घृतकी आहुति और हवि अर्पण करती हुई देवोंकी स्तुति करनेवाली (विश्ववारा नमोभिः) सब प्रकारका वरणीय धन लानेवाली अन्नों और नमस्कारोंके साथ (प्राची एति) पूर्व दिशाकी ओर अग्निके सामने जाती है । (१)

अग्नि उषाका संमान करनेके लिये प्रकाशता है । ऐसा यहां कहा है ।

२७९ (सूर्यस्य भानुना सं यतते) सूर्यके प्रकाशसे अग्नि अपना संबंध जोडता है । यह अग्नि (आ जुह्वानः घृतपृष्ठः स्वञ्चाः) प्रार्थनापूर्वक घीकी आहुति देनेसे प्रज्वलित हो उठा है । (यः इन्द्राय सुनवाम इति आह) जो इन्द्रके लिये सोमरस तैयार करूंगा ऐसा कहता है (तस्मै अमृध्राः उषसः व्युच्छन्) उसके लिये कष्टरहित उषाएं प्रकाशती रहें । (१)

ऋ० ५।४५।१ (सदापृण आत्रेयः। विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप्)

२८० विदा दिवो विष्यन्नद्रिमुक्थैरायत्या उषसो अर्चिनो गुः।
अपावृत व्रजिनीरुत् स्वर्गाद् वि दुरो मानुषीर्देव आवः ॥ १ ॥

ऋ० ५।५१।८ (स्वस्त्यात्रेयः। विश्वेदेवाः। उष्णिक्)

२८१ सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः। आ याह्यग्ने अत्रिवत् सुते रण ॥ ८ ॥

ऋ० ५।५९।८ (श्यावाश्व आत्रेयः। मरुतः। त्रिष्टुप्)

२८२ मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम्।
आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥ ८ ॥

ऋ० ५।६२।८ (श्रुतविदात्रेयः। मित्रावरुणौ। त्रिष्टुप्)

२८३ हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयःस्थूणमुदिता सूर्यस्य।
आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च ॥ ८ ॥

ऋ० ५।७५।९ (अवस्युरात्रेयः। अश्विनौ। पंक्तिः)

२८४ अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ९ ॥

---

२८० (विदा) ज्ञानपूर्वक (दिवः अद्रिं विष्यन्) द्युलोकसे वज्रको इन्द्रने फेंक दिया, (उक्थैः आयत्याः उषसः अर्चिनः गुः) स्तोत्रोंके साथ आनेवाली उषाओंके किरण बाहर आने लगे। (व्रजिनीः अपावृत) रात्री चली गयी, (स्वः उत् गात्) सूर्य ऊपर आगया है और (मानुषीः दुरः देव. वि आवः) मनुष्योंके घरोंके द्वार देवने खोल दिये हैं। मनुष्योंके व्यवहार शुरू हुए। (१)

२८१ हे (अग्ने) अग्ने ! (विश्वेभिः देवेभिः सजूः) सब देवोंके साथ (अश्विभ्यां उषसा सजूः) अश्विदेव और उषाके साथ एक मतसे (अत्रिवत् आ याहि) अत्रिके समान आओ और (सुते रण) सोम रसमें आनन्द प्राप्त करो। (८)

२८२ (अदितिः द्यौः) अमर्याद द्यौ (नः वीतये मिमातु) हमारे हविके लिये वृष्टि करे, (दानुचित्राः उषसः सं यतन्ता) जलदानसे चित्रविचित्र उषाएं वृष्टिके लिये यत्न करें। हे ऋषे! (गृणाना रुद्रस्य एते मरुतः) स्तुति किये गये रुद्रके पुत्र ये मरुत् (दिव्यं कोशं आ चुच्युवुः) दिव्य कोशको मेघसे वृष्टिको गिरा दें। (८)

२८३ (उषसः व्युष्टौ) उषाका प्रकाश होनेपर, (सूर्यस्य उदिता) सूर्यका उदय होनेपर (अयः स्थूणं हिरण्यरूपं) लोहोंके स्तंभोंपर सुनहरा रूप दिया है ऐसे (गर्तं) रथपर, हे मित्र और वरुण ! तुम दोनों (आ रोहथः) चढो और (अतः) वहासे (अदितिं दितिं च चक्षाथे) अमर्याद और समर्याद विश्वको देखो। (८)

उषा आनेके बाद सूर्योदय होनेपर मित्र और वरुण रथपर चढते हैं।

२८४ (रुशत्पशुः उषा अभूत्) पशुओंको प्रकाशित करनेवाली उषा आगयी है। (ऋत्वियः अग्निः अधायि) ऋतुके अनुसार यजन करनेवाला अग्नि स्थापित हुआ है। (वां वृषण्वसू अमर्त्यः रथः अयोजि) आपका बल और धन लानेवाला अमर रथ जोडा गया है। हे (माध्वी दस्रा) शत्रुका नाश करनेवाले मीठास युक्त अश्विदेवो ! (मम हवं श्रुतं) मेरी प्रार्थना सुनो। (९)

ऋ० ५।७६।१ (भौमोऽत्रिः । अश्विनौ । त्रिष्टुप्)

२८५ आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद् विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥ १ ॥

ऋ० ५।८१।२ (श्यावाश्व आत्रेयः । सविता । जगती)

२८६ विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
वि नाकमख्यत् सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति ॥ २ ॥ वा.य.१२।३

ऋ० ६।१५।५ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजो वीतहव्य आंगिरसो वा । अग्निः । जगती)

२८७ पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुच उषसो न भानुना ।
तूर्वन् न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ॥ ५ ॥
वा० य० १७। १०

ऋ० ६।१७।५ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्)

२८८ येभिः सूर्यमुषसं मन्दसानोऽवासयोऽप दृळ्हानि दर्द्रत् ।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसस्परि स्वात् ॥ ५ ॥

ऋ० ६।२८।१ (गावः । त्रिष्टुप्)

२८९ आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन् त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥ १॥ अथर्व. ४। २१। १

---

२८५ (उषसां अनीकं अग्निः) उषाओंका तेज जैसा यह अग्नि (आ भाति) प्रकाश रहा है, (विप्राणां देवया वाचः) ज्ञानियोंकी दिव्य वाणियां । (उत् अस्थुः) शुरू हुई हैं । हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (पीपिवांसं घर्मं अच्छ) पीने योग्य इस सोमरसके पास (रथ्या अर्वाञ्चा इह नूनं आ यातं) रथसे यहां समीप आओ । (१)

२८६ (कविः विश्वा रूपाणि) ज्ञानी सविता सब रूपोंको (प्रति मुञ्चते) निर्माण करता है । (द्विपदे चतुष्पदे भद्रं प्रासावीत्) द्विपादों और चतुष्पादोंका कल्याण करता है । (वरेण्यः सविता नाकं वि अख्यत्) श्रेष्ठ सविता द्युलोकको प्रकाशित करता है । (उषसः अनु प्रयाणं वि राजति) उषाओंके पश्चात् आकर विराजता है । (२)

२८७ (पावकया चितयन्त्या कृपा) पवित्र करनेवाली और बुद्धि बढानेवाली कान्तिसे (यः क्षामन् रुरुचे) जो पृथ्वीपर प्रकाशित होता है, (भानुना उषसः न) जिस तरह प्रकाशसे उषाएं प्रकाशती हैं । (एतशस्य रणे तूर्वन् न यामन्) एतशके युद्धमें शत्रुका नाश करते हुए चढाई करनेवाला वीर (ततृषाणः अजरः न यः आघृणे) तृषासे पीडित और तरुण जैसे उस अग्निको तू प्रकाशित कर । (५)

२८८ (मन्दसानः) आनंदित होकर (येभिः सूर्यं उषसं अवासयः) जिन शक्तियोंसे सूर्य और उषाको तूने प्रकाशित किया और (दृळ्हानि अप दर्द्रत्) सुदृढ कीलोंको तोड दिया। हे इन्द्र ! (गाः परि महां अद्रिं सन्तं) गौओंके चारों ओर जो बडा कीला था, वह (अच्युतं) न हिलनेवाला होनेपर भी (स्वात् सदसः परि नुत्थाः) उसको अपने जडसे ही तुमने उखाड दिया । (५)

२८९ (गावः आ अग्मन्) गौवें आगयीं, (उत भद्रं अक्रन्) और उन्होंने कल्याण किया है । ये गौवें (गोष्ठे सीदन्तु) गोशालामें बैठें और (अस्मे रणयन्तु) हमें आनंदित करें । ये गौवें (इह पुरुरूपाः प्रजावतीः स्युः) यहां अनेक रंगरूपवाली और बछडोंसे युक्त हों और (इन्द्राय पूर्वीः उषसः दुहानाः) इन्द्रके लिये उषाके पूर्व दूध देती रहें । (१)

ऋ० ६। ३०। ५ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्)

२९० त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृळ्हमरुजः पर्वतस्य ।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन् द्यामुषासम् ॥ ५ ॥

ऋ० ६। ३८। ४

२९१ वर्धाद् यं यज्ञ उत सोम इन्द्रं वर्धाद् ब्रह्म गिर उक्था च मन्म ।
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तोर्वर्धान् मासाः शरदो द्याव इन्द्रम् ॥ ४ ॥

ऋ० ६। ३९। ३

२९२ अयं द्योतयदद्युतो व्य१क्तून् दोषा वस्तोः शरद इन्दुरिन्द्र ।
इमं केतुमदधुर्नू चिदह्नां शुचिजन्मन उषसश्चकार ॥ ३ ॥

ऋ० ६। ४७। ५ (गर्गो भारद्वाजः। सोमः। त्रिष्टुप्]

२९३ अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः शुक्रसद्मनामुषसामनीके ।
अयं महान् महता स्कंभनेनोद् द्यामस्तभ्नाद् वृषभो मरुत्वान् ॥ ५ ॥

ऋ० ६। ५०। ८ (ऋजिश्वा भारद्वाजः। विश्वे देवाः। त्रिष्टुप्)

२९४ आ नो देवः सविता त्रायमाणो हिरण्यपाणिर्यजतो जगम्यात् ।
यो दत्रवाँ उषसो न प्रतीकं व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि ॥ ८ ॥

---

२९० हे इन्द्र ! (त्वं दुरः वि) तूने द्वार खोलकर (अपः विषूचीः) जल प्रवाहोंको बहाया। तथा (पर्वतस्य दृळ्हं अरुजः) पर्वतका जो सुदृढ भाग था वह तुमने तोड दिया, (यां उषासं सूर्यं साकं जनयन् , द्योः उषा और सूर्यको साथ साथ प्रकट किया और (जगतः चर्षणीनां राजा अभवः) चलनेवालों और प्रजाजनोंका तू राजा हुआ है। (५)

२९१ (यं इन्द्रं यज्ञः उत सोमः वर्धात्) जिस इन्द्रको यज्ञ और सोम बढाता है तथा (ब्रह्म गिरः उक्था मन्म च वर्धात्) ज्ञान, स्तुति, साम और मंत्र जिसको बढाते हैं। (उषसः अह एनं वर्ध) उषाएं इसको बढाती हैं (अक्तोः यामन् वर्धान्) रात्रीका गमन जिसको बढाता है तथा (इन्द्रं द्यावः मासाः शरदः) इस इन्द्रको दिन, महिने और वर्ष बढाते हैं। (४)

२९२ (अयं अद्युतः अक्तून् वि द्योतयत्) इसने अंधकारमय रात्रीको भी प्रकाशित किया। हे इन्द्र ! इस (इन्दुः) सोमने (दोषा वस्तोः शरदः) रात्रीको और दिनको सालभर प्रकाशित किया। (इमं अह्नां केतु अदधुः) इस दिनके ध्वजको धारण किया और (उषसः शुचि जन्मन् चकार) उषाओंको शुद्ध प्रकाशमय किया। (३)

२९३ (शुक्रसद्मनां उषसां अनीके) शुद्ध उषाओंके समीपसे (चित्रदृशीकं अर्णः) विलक्षण सुंदर तेजवाला सूर्य (अयं विदत्) इस सोमने जान लिया है। (अयं महान् महता) इस बडे महान (मरुत्वान् वृषभः) मरुत वीरोंके साथ रहनेवाले बलवान वृष्टिकर्ताने (स्कंभनेन द्यां उत् अस्तभ्नात्) आधार देकर द्युलोकको ऊपर सुस्थिर किया है। (५)

२९४ (त्रायमाणः हिरण्यपाणिः) रक्षक सुवर्णके भूषण हाथोंपर धारण करनेवाला (यजतः) पूज्य (सविता देवः) सूर्य देव (नः आ जगम्यात्) हमारे पास आजाय। (यः दत्रवां उषसः न प्रतीकं) जो दाता उषाका सर्वस्व जैसा है वह (दाशुषे वार्याणि व्यूर्णुते) दाताको स्वीकार करने योग्य धन देता है। (८)

ऋ० ६।५२।४

२९५ अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥ ४ ॥

ऋ० ६।६०।२ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। इन्द्राग्नी। त्रिष्टुप्)

२९६ ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नूनमपः स्वरुषसो अग्न ऊळ्हाः।
दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥ २ ॥

ऋ० ६।७२।२ (इन्द्रासोमौ। त्रिष्टुप्)

२९७ इन्द्रासोमा वासयथ उषासमुत् सूर्यं नयथो ज्योतिषा सह।
उप द्यां स्कम्भथुः स्कंभनेनाप्रथतं पृथिवीं मातरं वि ॥ २ ॥

ऋ० ७।३।५ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। अग्निः। त्रिष्टुप्)

२९८ तमिद् दोषा तमुषसि यविष्ठमग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः।
निशिशाना अतिथिमस्य योनौ दीदाय शोचिराहुतस्य वृष्णः ॥ ५ ॥

ऋ० ७।५।५

२९९ त्वामग्ने हरितो वावशाना गिरः सचन्ते धुनयो घृताचीः।
पतिं कृष्टीनां रथ्यं रयीणां वैश्वानरमुषसां केतुमह्नाम् ॥ ५ ॥

---

२९५ (जायमानाः उषसः मां अवन्तु) प्रकट होनेवाली उषायें मेरी रक्षा करें। (पिन्वमानाः सिन्धवः मा अवन्तु) भरपूर भरी नदियां मेरा संरक्षण करें। (ध्रुवासः पर्वतासः मा अवन्तु) स्थिर पर्वत मेरा संरक्षण करें। (देवहूतौ पितरः मा अवन्तु) देवयज्ञमें पितर मेरा संरक्षण करें। (४)

२९६ हे इन्द्र और अग्ने (गाः अपः स्वः उषसः ऊळ्हाः) गौवें, जलप्रवाह, सूर्य उषाएं जो राक्षसोंके द्वारा चुरायीं थी उनके लिये (ता अभियोधिष्टं) तुमने युद्ध किया। (दिशः स्वः उषसः) दिशाएं सूर्यने उषाको प्राप्त किया। हे इन्द्र ! हे अग्ने ! (चित्राः अपः गाः) विलक्षण जलप्रवाह और गौवें तुम इस अपने रथको (नियुत्वान् युवसे) घोडे जोतकर प्राप्त करता है। (२)

२९७ हे इन्द्र और सोम ! तुम दोनोंने (उषासं वासयथः) उषाको प्रकाशसे बसाया। (ज्योतिषा सह सूर्यं उत् नयथः) प्रकाशके साथ सूर्यको तुमने ऊपर चढाया। (द्यां स्कंभनेन उप स्कम्भथुः) द्युलोकको आधार देकर स्थिर किया और (पृथिवीं मातरं वि अप्रथतं) पृथिवी माताको विस्तृत किया। (२)

२९८ (यविष्ठं आतिथिं तं इत् अग्निं) अत्यंत तरुण अतिथिके समान पूज्य इस अग्निको (दोषा उषसि) रात्रीमें तथा उषः-कालमें (अस्य योनौ तं निशिशाना नरः) इसके स्थानमें उसको प्रदीप्त करनेवाले लोग (अत्यं न) घोडेके समान (तं मर्जयन्तः) उसको शुद्ध करते हैं, उसकी सेवा करते हैं। (आहुतस्य वृष्णः शोचिः दीदाय) हवन किये गये इस बलवान अग्निकी ज्वाला अधिक तेजस्वी होती है। (५)

२९९ हे अग्ने ! (कृष्टीनां पतिं, कृषि करनेवाली प्रजाके स्वामी, (रयीणां रथ्यं) धनोंके संचालक, (उषसां अह्नां केतुं) उषाओंके समेत दिनोंके ध्वजके समान, (वैश्वानरं त्वां) तुझ वैश्वानरको (वावशाना हरितः) चाहनेवाले घोडे (सचन्ते) सेवा करते हैं। तथा (घृताचीः धुनयः गिरः सचन्ते) घृत-मिश्रित हवीके अर्पणसे पापको धोनेवाली स्तुतियां भी तेरी सेवा करते हैं। (५)

ऋ० ७।६।५

३०० यो देह्यो३ अनमयद् वधस्नैर्यो अर्यपत्नीरुषसश्चकार ।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्निर्विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः ॥ ५ ॥

ऋ० ७।८।१

३०१ इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीळते सबाध अग्निरग्र उषसामशोचि ॥ १ ॥

ऋ० ७।९।१

३०२ अबोधि जार उषसामुपस्थाद्धोता मन्द्रः कवितमः पावकः ।
दधाति केतुमुभयस्य जन्तोर्हव्या देवेषु द्रविणं सुकृत्सु ॥ १ ॥

ऋ० ७।९।३

३०३ अमूरः कविरदितिर्विवस्वान् त्सुसंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः ।
चित्रभानुरुषसां भात्यग्रेऽपां गर्भः प्रस्व१ आ विवेश ॥ ३ ॥

ऋ० ७।१०।१

३०४ उषो न जारः पृथु पाजो अश्रेद् दविद्युतद् दीद्यच्छोशुचानः ।
वृषा हरिः शुचिरा भाति भासा धियो हिन्वान उशतीरजीगः ॥ १ ॥

आर्य पत्नी उषा

३०० (यः देह्यः वधस्नैः अनमयत्) जो आसुरी घातकोंको अपने आयुधोंसे विनम्र करता है (यः उषसः अर्यपत्नीः चकार) जो सूर्यपत्नी उषाको निर्माण करता है, (सः यह्वः अग्निः) उस महान् अग्निने (सहोभिः विशः निरुध्य) अपने सामर्थ्योंसे प्रजाका निरोध करके (नहुषः बलिहृतः चक्रे) प्रजाको कर देनेवाली बना दिया । (५)

यहां '**अर्यपत्नीः उषसः**' ये पद है। आर्योंकी पत्नियां उषा जैसी हों। ' अर्य ' नाम यहां सूर्यका है। जैसी सूर्यकी पत्नी उषा है वैसी आर्यकी पत्नी उषा जैसी हो।

३०१ (राजा अर्यः अग्निः नमोभिः सं इन्धे) यह श्रेष्ठ राजा अग्नि अन्नोंके हवनसे प्रकाशित हो रहा है। (यस्य प्रतीकं घृतेन आहुतं) जिसका रूप घीसे बढाया जाता है। (नरः सबाधः हव्येभिः ईळते) मनुष्य मिलकर हवनों द्वारा इसको पूजते हैं। वह (अग्निः उषसां अग्रे आ अशोचि) अग्नि उषाओंके सामने प्रकाशित हो रहा है। (१)

३०२ (जारः होता मन्द्रः) वयोवृद्ध, देवोंको बुलानेवाला, आनन्द देनेवाला, (कवितमः पावकः) अत्यंत ज्ञानी और पवित्रता करनेवाला अग्नि (उषसां उपस्थात् अबोधि) उषाओंके समीप जाग उठा है। यह (उभयस्य जन्तोः केतुं दधाति) दोनों प्रकारके प्राणियोंको ज्ञान देता है, (देवेषु हव्यं) देवोंको हवनीय द्रव्य और (सुकृत्सु द्रविणं) पुण्य कर्म करनेवालोंको धन देता है। (१)

३०३ (यः अमूरः कविः) जो अमूढ ज्ञानी, (अदितिः विवस्वान्) अदीन तेजस्वी, (सुसंसत् मित्रः अतिथिः) उत्तम साथी मित्र और पूज्य (नः शिवः) हमारे लिये शुभकारी, (चित्रभानुः) विशेष तेजस्वी (उषसां अग्रे भाति) उषाओंके अग्रभागमें प्रकाशता है। (सः अपां गर्भः) वह जलोंका, उत्पादक (प्रस्वः आविवेश) ओषधियोंके अन्दर प्रविष्ट होकर रहता है। (३)

३०४ (उषः न जारः) उषाके नाश करनेवाले सूर्यके समान (पृथु पाजः अश्रेत्) बहुत तेज यह अग्नि धारण करता है। (दविद्युतत् दीद्यत् शोशुचानः) अत्यंत चमकनेवाला तेजस्वी और प्रकाशमान (वृषा हरिः शुचिः) बलवान दुःखका हरण करनेवाला पवित्र अग्नि (धियः हिन्वानः) बुद्धि और कर्मोंको प्रेरित करता है और (भासा आभाति) अपने तेजसे प्रकाशता है। तथा (उशतीः अजीगः) सुखकी इच्छा करनेवालोंको जगाता है। (१)

ऋ० ७ । १० । २

३०५ स्व१र्ण वस्तोरुषसामरोचि यज्ञं तन्वाना उशिजो न मन्म ।
अग्निर्जन्मानि देव आ वि विद्वान् द्रवद् दूतो देवयावा वनिष्ठः ॥ २ ॥

ऋ० ७ । १८ । २० (इन्द्रः । त्रिष्टुप्)

३०६ न त इन्द्र सुमतयो न रायः संचक्षे पूर्वा उषसो न नूत्नाः ।
देवकं चिन्मान्यमानं जघन्थाऽव त्मना बृहतः शम्बरं भेत् ॥ २० ॥

ऋ० ७ । ३३ । ७ (वसिष्ठपुत्राः इन्द्रो वा । त्रिष्टुप्)

३०७ त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।
त्रयो धर्मास उषसं सचन्ते सर्वाँ इत् ताँ अनु विदुर्वसिष्ठाः ॥ ७ ॥

ऋ० ७ । ३५ । १० (विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप्)

३०८ शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ॥ १० ॥

ऋ० ७ । ३९ । २; अथर्व. १९ । १० । १०

३०९ प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट इयाते ।
विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥ २ ॥ वा. य.३३।४४

---

३०५ (अग्निः वस्तोः) अग्नि दिनके समय (उषसां अग्रे) उषाओंके आगे (स्वः न अरोचि) सूर्यके समान प्रकाशता है। (उशिजः न यज्ञं तन्वानाः) सुखकी इच्छा करनेवाले जैसे यज्ञ करते हैं और (मन्म) मननीय स्तोत्र पढते हैं। (विद्वान् दूतः देवयावा वनिष्ठः) वैसा विद्वान् दूत देवोंके पास जानेवाला (अग्निः देवः वि आ द्रवत्) अनेक प्रकारसे देवोंके सहायतार्थ गमन करता है। (२)

३०६ हे इन्द्र ! (ते पूर्वाः सुमतयः न संचक्षे) तेरी पुरातन समयसे चली आयी शुभ कृपाएं अवर्णनीय हैं। तथा (रायः) धन भी (उषसः न) उषाओंके समान अवर्णनीय हैं तथा (नूत्नाः न) नूतन कृपाएं भी अवर्णनीय ही हैं। (मान्यमानं देवकं चित् जघन्थ) घमंडी देवशत्रुका तुमने वध किया और (त्मना बृहतः शंबरं अव भेत्) स्वयं ही बडे वज्रसे शंबर नामक असुरका नाश किया। (२०)

३०७ (भुवनेषु त्रयः रेतः कृण्वन्ति) इन भुवनोंमें तीन देव वीर्य निर्माण करते हैं। (ज्योतिरग्राः आर्याः तिस्रः प्रजाः) ज्योति जिनके अग्रभागमें रहती है ऐसे आर्य तीन प्रकारके प्रजाके रूपमें रहते हैं। (त्रयः घर्मासः उषसं सचन्ते) तीन प्रकारके यज्ञ उषाका सेवन करते हैं (वसिष्ठाः तान् सर्वान् इत् अनु विदुः) वसिष्ठ इन सबको जानते हैं। (७)

३०८ (त्रायमाणः सविता देवः) संरक्षक सूर्य देव (नः शं) हमारा कल्याण करे। (विभातीः उषसः) तेजस्वी उषाएं (नः शं भवन्तु) हमारा कल्याण करें (पर्जन्यः प्रजाभ्यः) पर्जन्य प्रजाजनोंके लिये (नः शं भवतु) तथा हमारे लिये कल्याण करनेवाला हो तथा (क्षेत्रस्य शंभुः पतिः नः शं अस्तु) क्षेत्रका सुखदायी स्वामी हमारे लिये सुख देनेवाला होवे। (१०)

३०९ (एषां सुप्रयाः बर्हिः) इनका अन्नसे भरपूर भरा बर्हि यज्ञमें (प्र ववृजे) प्रयुक्त होता रहे। (विश्पती इव) प्रजाओंके दोनों पालक (नियुत्वान्) अश्वोंसे युक्त वायु और पूषा ये दो देव (विशां स्वस्तये) प्रजाजनोंके कल्याणके लिये (अक्तोः उषसः) रात्रीमें और उषःकालसे प्रारंभ होनेवाले दिनमें (पूर्वहूतौ) प्रथम करनेकी प्रार्थनामें (बिरीठे आ इयाते) यज्ञस्थानमें आ जावें। (२)

ऋ० ७।४१।६ (भगः। त्रिष्टुप्)

३१० समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥ ६ ॥
अथर्व. ३।१६।६; वा. य. ३४।३९

ऋ० ७।४१।७ (उषसः। त्रिष्टुप्)

३११ अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥
अथर्व. ३।१६।७; वा. य. ३४।४०

ऋ० ७।४४।१ (दधिक्रादयः। जगती)

३१२ दधिक्रां वः प्रथममश्विनोषसमग्निं समिद्धं भगमूतये हुवे ।
इन्द्रं विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिमादित्यान् द्यावापृथिवी अपः स्वः ॥ १ ॥

ऋ० ७।४४।३ (दधिक्राः। त्रिष्टुप्)

३१३ दधिक्रावाणं बुबुधानो अग्निमुप ब्रुव उषसं सूर्यं गाम् ।
ब्रध्नं मंश्चतोर्वरुणस्य बभ्रुं ते विश्वास्मद् दुरिता यावयन्तु ॥ ३ ॥

ऋ० ७।४४।४ (दधिक्राः। त्रिष्टुप्)

३१४ दधिक्रावा प्रथमो वाज्यर्वाऽग्रे रथानां भवति प्रजानन् ।
संविदान उषसा सूर्येणाऽऽदित्येभिर्वसुभिरंगिरोभिः ॥ ४ ॥

---

३१० (शुचये पदाय) शुद्ध स्थानमें बैठनेके लिये (दधिक्रावा इव) श्वेत घोडेकी तरह (उषसः अध्वराय सं नमन्त) उषाएं यज्ञके लिये आ जांय। (वाजिनः अश्वाः रथं इव) वेगवान् घोडे रथको खींचते हैं, उस तरह (वसुविदं भगं नः अर्वाचीनं) धनवान भगको हमारे समीप (आ वहन्तु) ले आवें। (६)

३११ (भद्राः उषासः) कल्याण करनेवाली उषाएँ (अश्वावतीः गोमतीः) अश्वों और गौओंसे युक्त (वीरवतीः) वीरोंसे युक्त तथा (घृतं दुहानाः) घीका दोहन करनेवाली और (विश्वतः प्रपीताः) सब गुणोंसे युक्त होकर (नः सदं उच्छन्तु) हमारे घरोंको प्रकाशित करती रहें। (यूयं०) तुम सदा हमें कल्याणोंके साथ सुरक्षित रखो। (७)

३१२ (वः ऊतये प्रथमं दधिक्रां हुवे) आप सबकी सुरक्षाके लिये मैं सबसे प्रथम दधिका नामक घोडेकी प्रशंसा गाता हूं। इसके पश्चात् अश्विदेव, उषा, प्रदीप्त अग्नि और भगकी प्रार्थना तुम सबकी सुरक्षाके लिये करता हूं। तथा इन्द्र, विष्णु, पूषा आदि देवोंके गुणोंका गान करता हूं। (१)

३१३ (दधिक्रावाणं बुबुधानः) दधिक्रावाको संबोधित करके मैं अग्निका उषा और सूर्यका गुणवर्णन करता हूं। (मंश्चतोः वरुणस्य ब्रध्नं बभ्रुं) घमण्डी शत्रुओंका विनाश करनेवाले वरुणके बडे तथा भूरे रंगके घोडेका मैं स्तवन करता हूं। (ते अस्मत् विश्वा दुरिता यावयन्तु) वे हमसे सब पापोंको दूर ले जावें। (३)

३१४ (प्रथमः वाजी अर्वा दधिक्रावा) सबसे मुख्य वेगवान् शीघ्रगामी दधिक्रावा अश्व (प्रजानन् रथानां अग्रे भवति) जानता हुआ रथके अग्रभागमें स्वयं ही जाकर रहता है और वह उषा, सूर्य आदि देवोंके साथ (सं विदानः) मिलकर रहता है (४)

ऋ० ७।६३।३ (सूर्यः। त्रिष्टुप्)

३१५ विभ्राजमान उषसामुपस्थाद् रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः ।
एष मे देवः सविता चच्छन्द यः समानं न प्रमिनाति धाम ॥ ३ ॥

ऋ० ७।६७।२ (अश्विनौ। त्रिष्टुप्)

३१६ अशोच्यग्निः समिधानो अस्मे उपो अदृश्रन् तमसश्चिदन्ताः ।
अचेति केतुरुषसः पुरस्ताच्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ॥ २ ॥

ऋ० ७।६८।९ (अश्विनौ। त्रिष्टुप्)

३१७ एष स्य कारुर्जरते सूक्तैरग्रे बुधान उषसां सुमन्मा ।
इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥

ऋ० ७।६९।५

३१८ यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ॥ ५ ॥

ऋ० ७।७१।१

३१९ अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते रिणक्ति कृष्णीररुषाय पन्थाम् ।
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम दिवा नक्तं शरुमस्मद् युयोतम् ॥ १ ॥

---

३१५ यह (विभ्राजमानः उषसां उपस्थात्) विशेष प्रकाशता हुआ सूर्य उषाओंके सामने (रेभैः अनुमद्यमानः उदेति) स्तोत्रपाठोंसे आनंदित होता हुआ उदयको प्राप्त होता है। (एषः देवः सविता चच्छन्द) यह सवितादेव मेरी कामनाकी पूर्ति करता है। (यः समानं धाम न प्रमिनाति) जो समान तेजस्वी स्थानको संकुचित नहीं करता। (३)

३१६ (अस्मे समिधानो अग्निः अशोचि) हमारे लिये प्रज्वलित हुआ अग्नि जगमगा रहा है। (तमसः अन्ताः चित् उप अदृश्रन्) अन्धकारके अन्तभाग दीखने लगे हैं। (दिवः दुहितः उषसः पुरस्तात्) स्वर्गकन्या उषाके सामने (जायमानः केतुः) प्रकट होनेवाला यह ध्वजरूपी केतु अर्थात् सूर्य (श्रिये अचेति) शोभा करनेके लिये प्रकट हो रहा है। (२)

३१७ (एषः स्यः सुमन्मा कारुः) यह वह उत्तम मननशील कारीगर कवि (उषसां अग्रे बुधानः) उषःकालके पहिले जाग्रत होकर (सूक्तैः जरते) स्तोत्रोंसे स्तुति करता है। (अघ्न्या पयोभिः इषा तं वर्धत्) गौ दूधसे और अन्नसे उसको पुष्ट करती है। (यूयं०) आप अपने कल्याण करनेके सब साधनोंसे हमारा रक्षण करो। (९)

३१८ हे (रथिराः) रथमें बैठनेवालो ! (यः वां स्यः रथः) जो आपका वह रथ (युजानः वर्तिः परियाति) घोडोंके साथ जोतनेपर सीधा घरको पहुंचता है। (तेन) उस रथसे हे अश्विदेवो ! (उषसः व्युष्टौ) उषाओंके प्रकाशित होनेपर (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (नः शं योः वि वहतं) हमारे लिये शान्ति और दुःखकी निवृत्ति ले आओ। (५)

३१९ (नक्) रात्री (स्वसुः उषसः अपजिहीते) अपनी बहिन उषासे दूर हटती है, (अरुषाय) सूर्यके लिये (कृष्णीः पन्थां रिणक्ति) रात्री मार्ग खुला कर देती है। (अश्वामघा गोमघा) घोडों और गौओंका वैभव पास रखनेवाले हम (वां हुवेम) आपको बुलाते हैं। तुम (दिवा नक्तं) दिन रात (शरुं अस्मत् युयोतं) शत्रुको हमसे दूर करो। (१)

सर्वप्रथम परीक्षार्थी

सितम्बर १९५२ ई. की परीक्षाओंमें सर्वप्रथम आये हुए परीक्षार्थियोंके नाम घोषित करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता होती है।

हम इन समस्त परीक्षार्थियोंका इस सफलताके उपलक्ष्यमें अभिनन्दन करते हैं।

इन परीक्षार्थियोंको समितिद्वारा विशेष पारितोषिक देना निश्चित हुआ है, जो उन्हें केन्द्रव्यवस्थापकों द्वारा प्रदान किया जाएगा।

परीक्षामन्त्री

स्वाध्याय मण्डल, किल्ला पारडी (सूरत)

१— प्रारम्भिणी- रामेश्वर रूपचंद सुगन्धी, मलकापूर
२— प्रवेशिका- भगीरथ नानुभाई मजमुदार, विसनगर
३— परिचय- कु० पद्मा जयकृष्णपंत जोशी, आकोला
४— विशारद- अनन्तराय यशवनराय भट्ट, सोनगढ

परीक्षा-विभाग

३१ जनवरी एवं १ फरवरी ५३ ई. को होनेवाली संस्कृतपरीक्षाओंका कार्यक्रम निम्न प्रकारसे है—

शनिवार ३१ जनवरी		रविवार १ फरवरी	
१०॥ से १॥	२॥ से ५॥	१०॥ से १॥	२॥ से ५॥
विशारद-प्रश्न पत्र १	विशारद प्रश्न पत्र २	विशारद-प्रश्न पत्र ३	विशारद-प्रश्न पत्र ४
×	परिचय-प्रश्नपत्र १	परिचय-प्रश्न पत्र २	परिचय-प्रश्न पत्र ३
×	×	प्रवेशिका-प्रश्न पत्र १	प्रवेशिका-प्रश्न पत्र २
×	×	प्रारम्भिणा	×

संस्कृतभाषाका अध्ययन करना प्रत्येक भारतवासीका राष्ट्रीय धर्म है।

संस्कृत हमारी मातृभाषा है। अतः उसका ज्ञान होना परम आवश्यक है। जो मातृभाषा है वह कठिन या दुर्बोध कैसे हो सकती है?

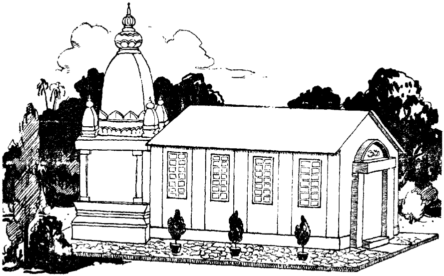
Regd. No. B. 1463

मुद्रक और प्रकाशक- व० श्री० सातवलेकर, बी. ए., भारत-मुद्रणालय, आनन्दाश्रम, किल्ला-पारडी (जि. सूरत)

वर्ष ३४ अंक २

धर्म

वेदमंदिरका चित्र



इसमें वेदादि ग्रन्थ संग्रह रहेगा, साप्ताहिक सत्सङ्ग, कथा एवं उत्सव होंगे, वेद पाठकी शिक्षाके साथ सूर्यनमस्कार एवं योगासन सिखाये जावेंगे तथा शुद्धिका कार्य भी होगा।

फरवरी १९५३ माघ २००९